M.A- POLITICAL SCIENCE

SEMESTER - 3rd

Comparative Politics and Political Analysis - I

(तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक विश्लेषण -I)

Semester-III [Paper-XII]

COMPARATIVE POLITICS AND POLITICAL ANALYSIS-I

Time: 3 Hours M. Marks: 80

Note: The questions paper will be divided into five Units carrying equal marks i.e 16 Marks of each questions. Each of first four units will contain two questions and the students shall be asked to attempt one question from each unit. Unit five shall contain eight short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such, all questions in unit five shall be compulsory.

UNIT-I

Evolution of Comparative Politics as a Discipline: Nature and Scope; Appraoches to the Study of Comparative Politics: Traditional, Structural- Functional, Systems and Marxist.

UNIT-II

Constitutionalsim: Difference between Constitution & Constitutionalsim; Concepts, Problems and Limitations, Concept of Power, Authority and Legitimacy

UNIT-III

Forms of Government: Unitary-Federal, Parliamentary-Presidential, their Inter-relationship in Comparative Perspective: India, U.S.A., U.K. and Switzerland.

UNIT-IV

Organs of Government: Executive, Legislature and Judiciary.

Table of Content

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	तुलनात्मक राजनीति: अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र Comparative Politics: meaning, nature and Scope	4 - 9
2.	तुलनात्मक राजनीति का विकास (Evolution of Comparative Politics)	9-11
3.	तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम (दृष्टिकोण)— Approach of study of Comparative Politics	11-21
	परंपरागत उपागम (Traditional Approach)	11-13
	व्यवस्था उपागम (System Approach)	13-16
	संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural -Functional Approach)	16-19
	मार्क्सवादी उपागम (Marxist Approach)	19-21
4.	संविधानवाद (Constitutionalism)— संविधान व संविधानवाद के बीच अंतर (difference between constitution and constitutionalism) संविधानवाद की समस्याएँ और सीमाएँ(Problems and Limitations of Constitutionalism) संविधानवाद का विकास, प्रकार (Evolution and Types of Constitutionalism)	21- 29 22 24-25 25-28
5.	शक्ति, सत्ता व औचित्यता(वैधता) (Power, Authority and Legitimacy)	29 - 45
6.	सरकारों के रूप(Forms of Government)— संसदात्मक शासन प्रणाली (Parliamentary form of Govt.) अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (Presidential form of Govt.) एकात्मक शासन प्रणाली (Unitary form of Govt.) संघात्मक शासन प्रणाली (Federal system of Govt)	45- 57
7.	सरकार के अंग(Organs of Government)- Executive, Legislature and Judiciary)	57-83

(1) तुलनात्मक राजनीति : अर्थ प्रकृति और क्षेत्र

अर्थ: तुलनात्मक राजनीति का अर्थ दो परिपेक्ष में दिया जाता है- संकुचित अर्थ में और व्यापक अर्थ में

- संकुचित अर्थ- आमतौर पर तुलनात्मक राजनीति दो या दो से अधिक देशों की शासन प्रणालियों अथवा संविधानों के तुलनात्मक अध्ययन को माना जाता है।
- व्यापक अर्थ- तुलनात्मक राजनीति विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन है, यह औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के संगठन, कार्य प्रणाली व उनकी प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन है।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं की— विभिन्न राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन को तुलनात्मक राजनीति माना जाता है।

तुलनात्मक राजनीति की परिभाषाएं-

(क) एडवर्ड ए फ्रीमैन के अनुसार, "तुलनात्मक राजनीति सरकारों के विभिन्न प्रकारों एवं विविध राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण है।"

(ख) जीन ब्लोंडेल के अनुसार, "तुलनात्मक राजनीति वर्तमान विश्व में राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों (models) का अध्ययन है।"

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति -

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति (Nature of Comparative Politics)-तुलनात्मक राजनीति एक ऐसा विषय है, जिसका अर्थ, प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र बदलता रहा है। 1970 के आस-पास इस विषय की जो प्रकृति बन कर उभरी है, उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भले ही तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के विषय में सभी राजनीति वैज्ञानिक एकमत न हो, फिर भी तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति से जुड़ी निम्नलिखित बातों पर इनमें सहमति है- कि

1. तुलनात्मक राजनीति आधुनिक काल की देन है।
2. तुलनात्मक राजनीति एक विज्ञान है।
3. तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र बहुत व्यापक है।
4. तुलनात्मक राजनीति, राजनीति का तुलनात्मक विश्लेषण है।
5. तुलनात्मक राजनीति अन्त:शास्त्रीय अध्ययन है।
6. तुलनात्मक अध्ययन में तुलना की इकाई छोटी या बड़ी कोई भी हो सकती है।
7. तुलनात्मक राजनीति मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन है।
8. तुलनात्मक राजनीति, राजनीति से जुड़े विषयों का तुलनात्मक अध्ययन है।

तुलनात्मक राजनीति में तुलना कैसे की जाए?

तुलनात्मक राजनीति से सम्बन्धित जिस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, वह इस बात को लेकर है कि तुलनात्मक राजनीति में तुलना कैसे की जाए।

कुछ विद्वानों का मत है कि तुलना अनुलम्बीय या लंबात्मक (Vertical comparison) होनी चाहिए जब कि दूसरे विद्वानों का मत है कि तुलना क्षैतिज या अम्बरान्तीय (Horizontal) होनी चाहिए। यहाँ इन दोनों मतों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है-

1. **अनुलम्बीय तुलना** - इसका अर्थ है एक देश के अंदर विभिन्न स्तरों की व्यवस्था की आपस में तुलना करना ।

प्रथम मत के समर्थकों का मानना है कि तुलनात्मक राजनीति, राजनीति का अनुलम्बात्मक अध्ययन (Vertical Study of Politics) है। इन विद्वानों के अनुसार तुलनात्मक राजनीति एक ही देश में विभिन्न स्तरों पर मौजूद सरकारों तथा उनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का अध्ययन है। इन विद्वानों का कहना है कि प्राय: सभी देशों में तीन स्तरों पर सरकारें कार्य करती हैं-केन्द्रीय स्तर, प्रान्तीय स्तर और स्थानीय स्तर। इन विद्वानों की धारणा है कि एक ही देश में विभिन्न स्तरों पर काम कर रही सरकारों की परस्पर तुलना करके कुछ निश्चित परिणाम निकाले जा सकते हैं और

उनके आधार पर सिद्धान्त निर्मित किए जा सकते हैं।
किन्तु अनेक विद्वान तुलनात्मक राजनीति में तुलना करने के इस ढंग से सहमत नहीं हैं।

2. क्षैतिज तुलना - दूसरे मत के समर्थक विद्वान तुलनात्मक राजनीति को विभिन्न देशों की राजनीति का अम्बरान्तीय अध्ययन (Horizontal Study of Politics) मानते हैं। इनका मत है कि राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन अम्बरान्तीय आधार पर होना चाहिए। इस आधार पर विभिन्न सरकारों का और उन तत्त्वों का, जो सरकारों की कार्य-प्रणाली को प्रभावित करते हैं, तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए। इस विचारधारा के समर्थकों का मानना है कि इस आधार पर विभिन्न देशों की सरकारों का अध्ययन किया जा सकता है। इन विद्वानों का मानना है कि इस आधार पर किए अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलेंगे, वे अधिक ठोस और सर्वमान्य होंगे। अतः आजकल अध्ययन की इसी पद्धति को उचित माना जाता है। इस विचारधारा के महत्त्व के विषय में जीन ब्लोंडल ने ठीक ही कहा है कि "हमारे पास तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन का केवल एक ही दृष्टिकोण शेष बचता है और वह है-वर्तमान विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं से सम्बद्ध सरकारों का राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार (Across the Boundaries) अध्ययन करना।"

तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन-क्षेत्र (Scope of Comparative Politics)-

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र के संबंध में दो प्रमुख दृष्टिकोण प्रचलित हैं-

(i) परम्परागत दृष्टिकोण- जिसे कानूनी और औपचारिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है और प्लेटो, अरस्तू, मान्टेस्क्यू, मुनरो आदि विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र के परम्परागत दृष्टिकोण को माना है। इन्होंने इसके अध्ययन-क्षेत्र में राज्य की औपचारिक संस्थाओं, उनके संविधानों व कानूनों को शामिल किया है। इन्होंने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र को बहुत सीमित बना दिया है।

(ii) आधुनिक दृष्टिकोण - आधुनिक दृष्टिकोण वाले विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र को विस्तृत बना दिया है, क्योंकि इन्होंने इसके अध्ययन-क्षेत्र में न केवल औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं को शामिल किया है, बल्कि अनौपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के साथ-साथ उन विषयों को भी इसके अध्ययन-क्षेत्र में शामिल कर दिया है, जो राजनीति को किसी-न-किसी तरह प्रभावित करते हैं।

यद्यपि तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं, फिर भी, अनेक विद्वान निम्नलिखित विषयों को तुलनात्मक राजनीति के **अध्ययन-क्षेत्र** में शामिल करने पर सहमत हैं-

1. सरकारों का अध्ययन (Study of Governments)- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र में विश्व की विभिन्न राज्य सरकारों के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। इसके अध्ययन क्षेत्र में हम सरकारों की संरचनाओं, उसकी कार्य-प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं के अध्ययन को सम्मिलित करते हैं और इनकी समानताओं और असमानताओं को जानने का प्रयास करते हैं।

2. राजनीतिक दलों और दबाव समूहों का अध्ययन (Study of Political Parties and Pressure Groups)- वर्तमान काल में विश्व के अनेक देशों में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली सफलतापूर्वक चल रही है। लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली वाले देशों में राजनीतिक दल व दबाब समूहों का होना अनिवार्य माना जाता है। अनेक राजनीति शास्त्रियों ने विभिन्न देशों की दलीय प्रणालियों व दबाव समूहों का तुलनात्मक अध्ययन किया है औ अपने अध्ययन में दलीय प्रणाली और दबाव समूहों की तुलना करके इनकी भूमिका की विवेचना की है। विभिन्न देशों की दलीय प्रणाली के अध्ययन के आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाला है कि संसदीय शासन-प्रणाली के सफलता के लिए द्वि-दलीय प्रणाली उचित है।

3. विभिन्न अवधारणाओं का अध्ययन (Study of Various Concepts)- राजनीति में नई अवधारणाओं का जन्म होता रहता है, जिससे राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में वृद्धि होती है। आधुनिक युग में राजनीतिक आधुनिकीकरण, राजनीतिक विकास, राजनीतिक सहभागिता व राजनीतिक संस्कृति जैसी कुछ ऐसी अवधारणाएं हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व की राजनीति

को प्रभावित किया है। अतः अनेक राजनीतिक विद्वानों ने अपने तुलनात्मक अध्ययनों में इन अवधारणाओं की विस्तार से चर्चा की है।

4. **प्रमुख राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन** (Study of Main Political Problems) - तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में विद्वान राजनीति की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का अध्ययन करते हैं और उनके समाधान के सुझाव पेश करते हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक हिंसा, राजनीति का आपराधिकरण, राजनीतिक अस्थायित्व आदि प्रमुख राजनीतिक समस्याएँ हैं। इन्होंने राजनीति के अध्ययन के लिए नए क्षेत्र खोल दिए हैं।

5. **विकासशील देशों की राजनीतिक-व्यवस्थाओं का अध्ययन** (Study of Political Systems of Developing Countries)- दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका महाद्वीप के अनेक देश स्वतंत्र हुए। इन देशों में न तो शासन का कोई एक रूप पनप पाया और न ही कोई राजनीतिक संस्कृति विकसित हो पायी। ये देश अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं, जिनके फलस्वरूप राजनीतिक विद्वानों का ध्यान इनकी ओर गया और उन्हेंनि इन देशों का अध्ययन किया और इसके आधार पर कुछ नवीन सिद्धान्तों का निर्माण किया। ऐसे अध्ययन भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, घाना, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, भूटान, इन्डोनेशिया आदि जैसे देशों में हुए।

6. **सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का अध्ययन** (Study of Socio-Economic Problems)-
बेरोजगारी, छुआछूत, सामाजिक असमानता और परिवार नियोजन आदि कुछ ऐसी सामाजिक-आर्थिक समस्याएं हैं, जो विश्व के अनेक देशों की राजनीति को प्रभावित कर रही हैं। यदि इनका निदान नहीं हुआ, तो इनका प्रभाव इन देशों की राजनीति पर ही नहीं, बल्कि विश्व राजनीति पर तहत इन सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का अध्ययन जरूरी है।

7. **राजनीतिक सहभागिता एवं मतदान व्यवहार का अध्ययन** (Study of Political Participation and Voting Behaviour) - लोकतंत्र में राजनीतिक सहभागिता और मतदान व्यवहार का बहुत महत्त्व होता है, अतः यह जानने के लिए कि राजनीतिक सहभागिता का किस देश में क्या स्तर है और ऐसा क्यों है, विभिन्न देशों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार विभिन्न देशों के मतदान व्यवहार का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

8. **शक्ति-सन्तुलन का अध्ययन** (Study of Balance of Power)-
आज विश्व के विभिन्न देश शक्ति-सन्तुलन स्थापित करने के लिए निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। हम इन प्रयासों का पता इन देशों की विदेश नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके लगा सकते हैं। शक्ति-सन्तुलन स्थापित करने के लिए विभिन्न देशों के मध्य जो सन्धि व समझौते होते हैं, उनका प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ता है। अतः आज के युग में विभिन्न राज्यों के मध्य चल रहे शक्ति-सन्तुलन के प्रयासों को जानना जरूरी है।

9. **अभिजनवर्ग एवं नौकरशाही का अध्ययन** (Study of Elites and Bureaucracy)- वैसे तो प्रत्येक शासन प्रणाली में अभिजन वर्ग और नौकरशाही की विशेष भूमिका होती है, किन्तु लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः इनके संगठन व कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन तुलनात्मक राजनीति में किया जाता है।

10. **चुनाव-प्रणालियों का अध्ययन** (Study of Electoral System)- चुनाव की विभिन्न प्रणालियाँ होती हैं और इनके अपने अपने गुण-दोष होते हैं। अतः यह जानने के लिए कि कौन-सी चुनाव-प्रणाली अच्छी है और क्यों है, विभिन्न देशों में प्रचलित चुनाव-प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन करना जरूरी है।

11. **राजनीतिक सिद्धान्तों, विश्लेषणों एवं खोजों का अध्ययन** (Study of Political Theories, Analysis and Researches) - तुलनात्मक राजनीति के ज्ञान में वृद्धि नए सिद्धान्तों, विश्लेषणों एवं खोजों से होती है। इसीलिए इसके अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न सिद्धान्तों, राजनीतिक विश्लेषणों और नई खोजों को सम्मिलित करने के पक्षधर हैं।

12. **राजनीतिक प्रक्रियाओं व कार्य-प्रणालियों का अध्ययन** (Study of Political Process and Workings)-
तुलनात्मक राजनीति में विभिन्न राजनीतिक प्रक्रियाओं और कार्य-प्रणालियों का भी अध्ययन किया जाता है। विभिन्न

राज्यों में अनेक राजनीतिक संरचनाएं होती हैं। इनके द्वारा अलग-अलग कार्य किए जाते हैं और इनके कार्य करने की अलग-अलग प्रक्रियाएँ होती हैं। इनकी प्रक्रियाओं और कार्य-प्रणालियों के अध्ययन से ही इनके व्यवहार को समझा जा सकता है। अतः तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक प्रक्रियाओं और कार्य-प्रणालियों को सम्मिलित किया जाता है।

तुलनात्मक राजनीति के लक्षण या विशेषताएं तथा उपयोगिता/महत्व

Characteristics and utility of Comparative Politics.)

तुलनात्मक राजनीति की कुछ **मुख्य विशेषताएं** इस प्रकार है:

1. **मूल्य-मुक्त अध्ययन (Value-free Study)**- वर्तमान काल में तुलनात्मक राजनीति को मूल्य-मुक्त अध्ययन बना दिया गया है। ऐसा करने में अमेरिका के उन विद्वानों का प्रमुख योगदान है, जिन्होंने व्यवहारवादी दृष्टिकोण को तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए अपनाया। इन विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को वास्तविक बनाने के लिए यह जरूरी माना कि अध्ययन मूल्य-मुक्त होने चाहिए, क्योंकि ऐसे अध्ययनों से ही वास्तविकता तक पहुँचा जा सकता है।

2. **अंतःशास्त्रीय अध्ययन (Inter-disciplinary Study)** — वर्तमान युग में तुलनात्मक राजनीति का स्वरूप अन्तः-शास्त्रीय हो गया है। वर्तमान युग के विद्वानों की यह मान्यता है कि राजनीति का सम्पूर्ण अध्ययन तभी संभव है, जब अन्य विषयों; जैसे-समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र व मनोविज्ञान का भी अध्ययन किया जाए। इनकी मान्यता है कि राजनीति सदैव गैर-राजनीतिक घटनाओं व स्थितियों से प्रभावित होती है। अतः राजनीति का अध्ययन अन्तर-शास्त्रीय दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए।

3. **वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन (Scientific and Systematic Study)**-तुलनात्मक राजनीति में वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन किए जाते हैं। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया जाता है, ताकि अध्ययन के ठोस परिणाम निकल सकें और सर्वमान्य सिद्धांतों का निर्माण हो सके। तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन बहुत ही व्यवस्थित ढंग से किया जाता है।

4. **व्यवस्था मूलक दृष्टिकोण (Systematic Approach)**- आधुनिक समय में राजनीति विज्ञान के विद्वान सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन को जरूरी मानते हैं, न कि उसके किसी एक भाग के अध्ययन को। इन विद्वानों की मान्यता है कि सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन से ही तुलनात्मक राजनीति को अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है।

5. **विकासशील देशों का अध्ययन (Study of Developing Countries)**- तुलनात्मक राजनीति में पश्चिमी देशों के अध्ययन के साथ-साथ विकासशील देशों का भी अध्ययन किया जाता है, क्योंकि इन देशों की राजनीति की अपनी अलग ही विशेषताएं हैं।

6. **विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन (Analytical and Explanatory Study)** - तुलनात्मक राजनीति में अध्ययन विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक होता है। इसमें विभिन्न देशों की राजनीति का केवल विवरण नहीं होता है ,बल्कि इसमें समस्याओं का विश्लेषण कर उनका हल तलाशने का प्रयास भी किया जाता है।
7. **एक नया विषय (New Discipline)**- तुलनात्मक राजनीति आधुनिक युग की उपज है, क्योंकि इसका एक विषय के रूप में विकास दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात हुआ है। यह विषय अपना एक अलग अर्थ लिए हुए है और इसकी अलग प्रकृति और अध्ययन क्षेत्र है। यह अभी विकास के दौर से गुजर रहा है, किन्तु इसकी अपनी पहचान बन चुकी है। वस्तुतः तुलनात्मक राजनीति एक नए विषय के रूप में स्थापित हो चुका है।
8. **व्यवहारवादी और संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग (use of Behavioural and Structural Functional Approaches)**- विश्व राजनीति में जो नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई, उनका समाधान करने में परम्परागत दृष्टिकोण असफल रहा है । अतः इन चुनौतियों का सामना करने के उद्देश्य से नए उपागमों की खोज की गयी। अमेरिकी विद्वानों के प्रयासों से ऐसा संभव हो पाया और इसलिए तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए विभिन्न नए उपागमों जैसे - व्यवहारवादी एवं संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोणों का विकास हुआ। अमेरिकी विद्वान - डेविड ईस्टन और जी. ए.

आमण्ड जैसे विद्वानों ने राजनीति के व्यवहारवादी अध्ययन पर जोर दिया, ताकि अध्ययन को वास्तविर बनाया जा सके।

तुलनात्मक राजनीति की उपयोगिता/महत्व (Utility/importance of Comparative Politics)

इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए , हैरी एक्सटीन तथा बार्ड ने उचित ही कहा है कि "**तुलनात्मक राजनीति एक ऐसा विषय है, जो हमें घर बैठे ही सम्पूर्ण विश्व की सैर करवा देता है।**" आधुनिक युग में तो इसका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि इस विषय के अध्ययन के बिना राजनीति विज्ञान का अध्ययन अपूर्ण माना जाता है। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की निम्नलिखित **उपयोगिता** है-

1. **विभिन्न शासन-प्रणालियों को समझने में सहायक (Helpful in Understanding Various Systems of Government)**-तुलनात्मक राजनीति का प्रथम लाभ यह है कि इसका अध्ययन विश्व में प्रचलित विभिन्न प्रकार की शासन-प्रणालियों को समझने में हमारी सहायता प्रदान करता है। आज विश्व में विभिन्न प्रकार की शासन-प्रणालियाँ देखने को मिलती हैं; जैसे- संसदात्मक, अध्यक्षात्मक, एकात्मक, संघात्मक, लोकतंत्रात्मक, अधिनायकतंत्र, राजतंत्र आदि। इन शासन प्रणालियों की क्या विशेषताएं हैं; इनके क्या गुण व दोष हैं; किस देश में कौन-सी शासन-प्रणाली है और वह वहाँ क्यों सफल अथवा असफल है, इन सभी बातों का ज्ञान हमें तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है।
2. **विभिन्न शासन प्रणालियों की समानताओं और असमानताओं को समझने में सहायक -** (Helpful in Understanding the Similarities and Dis-similarities of Different Types of Government)-तुलनात्मक राजनीति विभिन्न शासन-प्रणालियों की समानताओं और असमानताओं को भी समझने में सहायक है। प्रत्येक शासन-प्रणाली की अपनी विशेषताएं, गुण व दोष होते हैं। तुलनात्मक राजनीति विश्व में प्रचलित विभिन्न शासन-प्रणालियों की न केवल समानता और असमानताओं को समझने में हमारी सहायता करती है, बल्कि यह इनके गुणों की तुलना करके यह समझने में भी हमारी सहायता करती है कि इनमें कौन-सी शासन-प्रणाली श्रेष्ठ है।
3. **राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक -** (Helpful in understanding Political Behaviour)-दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् राजनीति के अध्ययन में व्यवहारवाद का जन्म हुआ। जिसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार को समझना है। तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक वैज्ञानिक विभिन्न समाजों की तुलना करके मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार को समझने का प्रयास करते हैं।
4. **सिद्धांत-निर्माण में सहायक (Helpful in Theory-building)**- तुलनात्मक राजनीति में शोधकर्ता विभिन्न व्यवस्थाओं प्रणालियों, शासनों व समाजों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद कुछ सार्वभौमिक निष्कर्ष निकालते हैं, जो कुछ समय बाद सिद्धांत बन जाते हैं। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति सिद्धांत निर्माण में सहायक है।
5. **प्रचलित सिद्धांतों की पुनःजाँच करने में सहायक (Helpful in Retesting Existing Theories)**-तुलनात्मक राजनीति प्रचलित सिद्धांतों की पुनःजांच के कार्य में सहायक है। तुलनात्मक राजनीति - के विद्वान अपने अध्ययनों द्वारा प्रचलित राजनीतिक सिद्धांतों की जाँच करते हैं और इस बात का पता लगाते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में ये कितने उपयुक्त हैं। इससे प्रचलित सिद्धांतों की पुनःजाँच हो जाती है।
6. **राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में सहायक (Helpful in Making Political Study Scientific)**- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए जो वैज्ञानिक विधियाँ अपनायी गयीं, उनसे राजनीतिक अध्ययन वैज्ञानिक अध्ययन बन गए। इसके फलस्वरूप राजनीति विज्ञान, विज्ञान की श्रेणी में आ गया। वैज्ञानिक विधियाँ अपनाने के कारण राजनीतिक अध्ययन अधिक-से-अधिक अनुभवात्मक और व्यवहारवादी बन गया।
7. **प्रचलित संस्थाओं और व्यवस्याओं को सुधारने में सहायक (Helpful in Reforming Existing Institutions and Systems)-** प्रचलित शासन संस्थाओं में सुधार की हमेशा आवश्यकता होती है, क्योंकि वे भविष्य की परिस्थितियों में सही नहीं बैठती हैं। तुलनात्मक राजनीति के विद्वान अपने अध्ययनों में प्रचलित संस्थाओं और व्यवस्थाओं में कमियों का पता लगाते हैं और यह बताते हैं कि इन्हें कैसे सुधारा जा सकता है ?
8. **राजनीतिक घटनाओं को समझने में सहायक (Helpful in Understanding Political Events)**- तुलनात्मक राजनीति का महत्त्व इस बात में भी है कि यह विश्व में होने वाली राजनीतिक घटनाओं को पूर्ण रूप से समझने में हमारी सहायता करती है। तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन-कर्ता विभिन्न राजनीतिक घटनाओं के कारणों व प्रभावों के अध्ययन

के आधार पर यह जानने का प्रयास करता है कि ऐसी घटनाओं को भविष्य में कैसे रोका जा सकता है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, राजनीतिक घटनाओं को पूर्ण रूप से जानने में सहायक है।

9. **अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को समझने में उपयोगी (Useful in Understanding International Relations)**- तुलनात्मक राजनीति में विभिन्न देशों की व्यवस्थाओं के अध्ययन करने के साथ-साथ उनकी विदेश नीतियों का भी अध्ययन किया जाता है, जिससे अंतरराष्ट्रीय संबंधों को भी समझने में आसानी होती है।

10. **अन्य विषयों का ज्ञान भी (Knowledge of Other Subjects)**-तुलनात्मक राजनीति अन्तःशास्त्रीय अध्ययन पर जोर देती है। इसके फलस्वरूप यह अन्तःशास्त्रीय विषय बन गया है। तुलनात्मक राजनीति में हमें उन बातों की जानकारी मिलती है, जिनका संबंध समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों से होता है।

(2) तुलनात्मक राजनीति का विकास (Evolution of Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति के <u>विकास के इतिहास को हम प्रमुख रूप से दो भागों में बांट</u> सकते हैं-
(1) प्रारंभ से दूसरे विश्व-पुद्ध तक (From early period to second world war) और
(2) दूसरे विश्व युद्ध से वर्तमान तक (From second world war to present)।
तुलनात्मक राजनीति के विकास को समझने के लिए हमें इन दोनों कालों के इतिहास को समझना जरूरी है, जो इस प्रकार है-

(1) प्रारंभ से दूसरे विश्व युद्ध तक का काल (Period from the Begining to Second World War)- वैसे तो राजनीति के अध्ययन की परम्परा बहुत पुरानी है, किन्तु तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का प्रचलन अरस्तू से आरंभ हुआ है। अरस्तू ने तुलनात्मक पद्धति को अपनाया और 158 नगर-राज्यों के संविधानों का अध्ययन करके राजनीति के कुछ सिद्धांतों का निर्माण किया। उसने क्रान्ति के सिद्धांत के साथ-साथ सरकारों का भी वर्गीकरण किया। उसने अपने गुरू प्लेटो द्वारा अपनायी गयी निगमनात्मक पद्धति (Deductive Method) के स्थान पर आगमनात्मक पद्धति (Inductive Method) को अपनाया। अरस्तू ने अपने राजनीतिक विचारों का अपनी प्रसिद्ध रखना 'राजनीति' (Politics) में वर्णन किया है। अरस्तू को तुलनात्मक राजनीति का जनक माना जाता है,

<u>पुनर्जागरण युग</u> - इस काल में पुनःजागरण का युग (Period of Renaissance) तुलनात्मक राजनीति के विकास का दूसरा पड़ाव माना जाता है। इस युग में इस धारणा का जन्म हुआ कि राज्य दैवीय संस्था न होकर मानवकृत संस्था है। मैकियावली को इस युग का प्रवर्तक कहा जाता है। हमें उसकी प्रसिद्ध रचना 'प्रिंस' (Prince) में उसके विचारों का उल्लेख मिलता है। उसके निष्कर्ष अनेक राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित हैं। उसने सामाजिक अभियन्त्रणा (Social Engineering) के बारे में यह विचार प्रकट किया कि राज्य मानवकृत संस्था है और इसे सुधार करते हुए समाज को सुधारा जा सकता है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि राज्य व समाज को कैसे सुधारा जा सकता है। उसने राजा के लिए यह कहा कि उसमें शेर और लोमड़ी के गुण होने चाहिए। मैकियावली ने यह भी कहा कि राज्य को कभी भाड़े के सैनिकों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उसने ये निष्कर्ष विभिन्न शासकों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निकाले और उन्हें अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिंस' में स्थान दिया।

<u>बुद्धिवाद का युग (Period of Enlightment)</u>- बुद्धिवाद के युग में तुलनात्मक राजनीति इस युग में प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर आगे बढ़ी। इस युग की यह विशेषता थी कि इसमें अध्ययन पद्धतियों की अपेक्षा सिद्धांत-निर्माण पर जोर दिया गया। मॉन्टेस्क्यू की प्रसिद्ध रचना 'दि स्पिरिट ऑफ दी लॉज' (The Spirit of the Laws) इस युग की राजनीति पर लिखी गयी प्रसिद्ध रचना है। उसने तुलनात्मक पद्धति को अपनाया और इन प्रश्नों का हल तलाशने का प्रयास किया। उसने राजनीति विज्ञान को शक्तियों के पृथक्करण (Sepration of Powers) का सिद्धांत दिया, जिसका आज भी महत्त्व है। इस सिद्धांत का निर्माण उसने फ्रांस और ब्रिटेन की शासन-प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया और बताया कि नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए शक्तियों का विभाजन ज़रूरी है।

इतिहासवाद का युग (Period of Historicism)- तुलनात्मक राजनीति के विकास-क्रम में मॉन्टेस्क्यू युग के पश्चात् अगला युग इतिहासवाद का युग माना जाता है। यह युग तुलनात्मक राजनीति के विकास को 19वीं शताब्दी में ले आता है। वैसे इस युग का तुलनात्मक राजनीति के विकास में कोई विशेष योगदान नहीं है। इसी कारण कुछ विद्वान इस युग को तुलनात्मक

राजनीति के लिए नकारात्मक मानते हैं, किन्तु आगे चलकर इतिहासवाद के विरुद्ध जो प्रतिक्रियाएं हुई, उसने तुलनात्मक राजनीति को आगे बढ़ाने में काफी योगदान दिया।

इस युग के विद्वानों ने कुछ ऐसी अवधारणाएं दीं, जो आगे चलकर तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के आधारभूत सिद्धान्त बन गए, जैसे कार्ल मार्क्स की वर्ग की अवधारणा, जो राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्य के लिए आधार बन गयी। दूसरे, इस युग के विद्वानों ने कई समस्याओं को जन्म दिया, जिन पर आगे के राजनीति शास्त्रियों ने विचार किया। इस प्रकार भले ही इतिहासवाद तुलनात्मक राजनीति को प्रत्यक्ष रूप से लाभ नहीं दे पाया, फिर भी इस युग के विद्वानों ने अपने विचारों की प्रमाणिकता के लिए तुलनात्मक पद्धति को अपनाया, जिससे तुलनात्मक राजनीति को बल मिला। इस युग ने कई प्रत्ययों तथा सिद्धान्तों को जन्म दिया, जिन्होंने आगे चलकर तुलनात्मक राजनीति की अध्ययन सामग्री का कार्य किया।

राजनीतिक विकासवाद का युग (Period of Political Evolutionism) - तुलनात्मक राजनीति के विकास-क्रम में इतिहासवाद के युग के उपरान्त राजनीतिक विकासवाद का युग आता है। इस युग में राजनीतिक विद्वानों ने अपने अध्ययनों में राज्य व उसकी संस्थाओं की उत्पत्ति व विकास का पता लगाया। इन विद्वानों ने यह विचार प्रस्तुत किया कि राज्य व समाज विकास का परिणाम हैं और इनके विकास में अनेक तत्त्वों, जैसे-रक्त-संबंध, धर्म, शक्ति, सहयोग, आर्थिक आवश्यकता तथा राजनीतिक चेतना ने सहयोग दिया है। इस युग के विद्वानों ने अपने विचारों की प्रमाणिकता के लिए अनेक राज्यों व समाजों का तुलनात्मक अध्ययन किया।

इस युग में अनेक प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी गयीं ,सर हेनरी मेन की दो रचनाएँ 'Ancient Law and Early History of Institutions' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हेनरी मेन ने अपनी इन रचनाओं में यह समझाने का प्रयास किया कि राज्य कुटुम्ब का ही विस्तृत रूप है। ने एडवर्ड जेम्स ने अपनी पुस्तकों 'A Short History of Politics' और 'The State and the Nation' में राज्य के विकास की चर्चा की और कहा कि समाज के टूटने से राज्य का जन्म हुआ है। इसी तरह मैकाइवर व ई. एम. सेट ने अपनी पुस्तकों "The Modern State' और 'Political Institutions' में राज्य के विकास में योगदान देने वाले तत्त्वों का वर्णन किया है। विद्वानों का मानना है कि इस युग की तुलनात्मक राजनीति को यह देन है कि इस युग में विद्वानों ने राज्य की उत्पति और विकास के लिए जो तथ्य (Facts) दिए, उनसे तुलनात्मक राजनीति को बल मिला।

दूसरे विश्व युद्ध से वर्तमान काल तक का युग (Period from Second World War to Present) -

दूसरे विश्व-युद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति का निम्नलिखित रूप में विकास हुआ-

1. अध्ययन-क्षेत्र का विस्तार (Expansion in the Scope)- दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में अनेक राज्यों का उदय हुआ, जिन्हें तीसरी दुनिया अथवा विकासशील राज्यों के नाम से जाना जाने लगा। इन राज्यों में राजनीतिक स्थिरता व समानता का अभाव रहा। राजनीतिक विद्वानों का ध्यान इन राज्यों में उन परिस्थितियों की खोज करने की ओर गया, जिनके कारण इन राज्यों की राजनीति उथल-पुथल हो रही थी। इसके फलस्वरूप तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र पहले की तुलना में विस्तृत हो गया, क्योंकि अब विद्वान पाश्चात्य देशों की शासन-प्रणालियों के साथ-साथ इन नवीन राज्यों की शासन प्रणालियों का भी अध्ययन करने लगे थे।

2. वैज्ञानिक अध्ययन पर अधिक बल (More Emphasis on Scientific Study)- दूसरे विश्व-चुर के पश्चात् विद्वानों ने अध्ययनों की वैज्ञानिक परिशुद्धता पर अधिक जोर दिया, ताकि अध्ययन के निष्कर्ष अधिक ठोस और प्रमाणिक हो सकें। इस दौर में विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धतिक का प्रचलन प्रारंभ किया। अध्ययन के लिए नई-नई वैज्ञानिक तकनीकों और पद्धतियों का इस्तेमाल किया, ताकि उनके ज्ञान को वैज्ञानिक परिशुद्धता मिल सके।

3. राजनीति के सामाजिक परिवेश पर बल (More Emphasis on Social Setting of Politics)-दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् राजनीति शास्त्रियों ने यह महसूस किया कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने सामाजिक परिवेश से प्रभावित होती है। अतः इसका अध्ययन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। इससे तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन अन्तःशास्त्रीय अध्ययन (Inter-Disciplihary) बन गया।

4. नवीन उपागमों का प्रचलन (Use of New Approaches)- दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात अध्ययन के लिए नई पद्धतियों की

खोज शुरू हुई और तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए कई नए उपागमों का प्रचलन शुरू हुआ, जिनमें संरचनात्मक प्रकार्यात्मक (Structural-Functional), व्यवस्था विश्लेषण (System Analysis), एवं मार्क्सवादी-लेनिनवादी (Maxist-Leninist) उपागम प्रमुख हैं।

स्पष्ट है कि दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति का तेजी से विकास हुआ, इसके अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रचलन शुरू हुआ और इसका अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत हो गया और अन्ततः यह एक स्वतंत्र विषय बन गया।

तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान स्थिति (Present Position of Comparative Politics)- यद्यपि दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् अनेक राजनीति शास्त्रियों ने विकासशील देशों की राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन करना प्रारंभ कर दिया था, फिर भी पहले दस-पन्द्रह वर्षों तक विकासशील देशों के अध्ययन तुलनात्मक नहीं ये, क्योंकि ये पृथक् पृथक् अध्ययन थे। किन्तु इन अध्ययनों ने तुलनात्मक अध्ययन में सहयोग दिया।

नवोदित राज्यों अथवा तीसरी दुनिया के देशों की राजनीतिक अस्थिरता और विविधताओं ने अध्ययन-कर्ताओं के लिए तथ्यों व आँकड़ों का भंडार लगा दिया। इसके फलस्वरूप अध्ययन-कर्ताओं की रुचि इन राज्यों के अध्ययनों में बढ़ी और उन्होंने इन राज्यों में राष्ट्रवाद की उभरती प्रवृत्ति, शक्ति की वैधता, शासन में सेना का अधिकतम प्रभाव आदि विषयों को जानने की चेष्टा की। कुछ विद्वानों ने इन राज्यों में आधुनिकता और राजनीतिक विकास के स्तर को भी जानने का प्रयास किया और जापान, चीन और रूस के विकास मॉडलों के परिप्रेक्ष्य में इन राज्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। वर्तमान समय में अधिकतर तुलनात्मक अध्ययन पाश्चात्या देशों की अपेक्षा इन्हीं नवोदित अथवा विकासशील देशों में हो रहे हैं। इस प्रकार जहाँ विकासशील देशों के अध्ययनों ने तुलनात्मक राजनीति के नए दृष्टिकोणों को विकसित करने में योगदान दिया है, वहीं इन अध्ययनों ने तुलनात्मक राजनीति के लिए नए अध्ययन-क्षेत्र को खोल कर इसे पहले से अधिक विस्तृत बना दिया है। वर्तमान में तुलनात्मक राजनीति अधिक व्यावहारिक बन गयी है। इसके निष्कर्षों में वैज्ञानिक तकनीकों व विधियों के प्रयोग के कारण अधिक परिशुद्धता आ गयी है।

(3) तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण (उपागम) (Approaches to the Study of Comparative Politics)

- **परंपरागत उपागम**
- **व्यवस्था सिद्धांत (उपागम)**
- **संरचनात्मक - प्रकार्यात्मक उपागम**
- **मार्क्सवादी उपागम**

[परम्परागत दृष्टिकोण या उपागम]

परम्परागत दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन अथवा तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण का सबसे पुराना दृष्टिकोण है। इस आधार पर इस दृष्टिकोण को प्राचीन दृष्टिकोण भी कहा जाता है। दूसरे विश्व-युद्ध तक इस दृष्टिकोण का राजनीतिक अध्ययनों में प्रभुत्व रहा, क्योंकि सभी अध्ययन इसी दृष्टिकोण से हुए। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत राजनीतिक विद्वानों ने अपने अध्ययन के लिए दार्शनिक विधि (Philosophical Method), ऐतिहासिक विधि (Historical Method) और कानूनी, औपचारिक, संस्थागत विधि (Legal, Formal, Institutional Method) को अपनाया।

इन विधियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. **दार्शनिक विधि (Philosophical Method)-** यह राजनीति के अध्ययन की सबसे पुरानी विधि है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू आदि विद्वानों ने अपने राजनीतिक अध्ययन में इसी विधि को अपनाया। इस विधि में आदर्शों एवं मूल्यों का विशेष स्थान होता है; इन्हीं को आधार मानकर अध्ययन किए जाते हैं और तत्पश्चात् सिद्धान्त निर्मित किए जाते हैं। प्लेटी ने इसी विधि

द्वारा आदर्श राज्य के सिद्धान्त का निर्माण किया। इस विधि को आदर्शात्मक विधि भी कहा जाता है। किन्तु इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन नहीं हो पाते हैं और प्रस्तुत किए गए निष्कर्ष कल्पना पर आधारित होने के कारण व्यावहारिक नहीं होते हैं।

2. **ऐतिहासिक विधि (Historical Method)**- राजनीति के अध्ययन की यह एक बहुत पुरानी विधि है। इस विधि में इतिहास को आधार मानकर अध्ययन किए जाते हैं। इस विधि को न केवल प्राचीन काल में, बल्कि आधुनिक काल में भी अनेक राजनीतिक विद्वानों ने अध्ययन के लिए अपनाया है। कार्ल मार्क्स, मैकाइवर व सर हेनरी मेन आदि विद्वानों ने अध्ययन के लिए इसी विधि का सहारा लिया। इस विधि में राजनीतिक संस्थाओं के इतिहास को देखा जाता है; ऐतिहासिक प्रलेखों व पुस्तकों से तथ्य एकत्रित किए जाते हैं और फिर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। राज्य व उसकी संस्थाओं की उत्पत्ति एवं विकास के लिए इन विद्वानों ने इस विधि को उपयोगी माना है, किन्तु इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इससे प्रायः विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के मध्य मौजूद सतही समानताओं का ही पता लगता है, जो अधिकांश मामलों में गुमराह करने वाली होती हैं। दूसरे, इस विधि द्वारा किए गए अध्ययनों पर अध्ययन-कर्ता के अपने विचारों अथवा मूल्यों का भी प्रभाव होता है, जिससे कई बार गलत निष्कर्ष निकल आते हैं।

3. **कानूनी, औपचारिक व संस्थागत विधि** (Legal, Formal and Institutional Method)- राजनीतिक अध्ययन की एक अन्य विधि कानूनी, औपचारिक व संस्थागत भी है। इस विधि का प्रचलन 19वीं शताब्दी में हुआ। इस विधि के अनुसार राजनीतिक संस्थाओं का कानूनी आधार पर अध्ययन किया जाता है। इसके तहत केवल औपचारिक संस्थाओं, जिन्हें संवैधानिक संस्थाएं कहा जाता है, का अध्ययन किया जाता है। ऐसे अध्ययनों को संस्थागत अध्ययन इसलिए कहा जाता है, क्योंकि अध्ययन का आधार राजनीतिक संस्थाएं होती हैं।

परम्परागत दृष्टिकोण की विशेषताएं (Characteristics of Traditional Approach)

राजनीतिक अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण की **प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-**

1. **मुख्यत: अतुलनात्मक (Essentially Non-Comparative)** - तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषता यह है कि इस दृष्टिकोण के अनुसार जो अध्ययन हुए, उन्हें तुलनात्मक अध्ययन नहीं माना जा सकता है, क्योंकि ये ऐसे अध्ययन हैं, जो अलग-अलग राजनीतिक संस्थाओं को लेकर किए गए हैं। इन अध्ययनों को देश-देश (Country by Country) अध्ययन कहा जाता है।

2. **मुख्यत: वर्णनात्मक (Essentially Descriptive)**- परम्परागत दृष्टिकोण प्रधानतः वर्णनात्मक दृष्टिकोण माना जाता है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत विद्वानों ने जो रचनाएं लिखीं, उनमें उन्होंने केवल राजनीतिक संस्थाओं या संविधानों का ही वर्णन किया है। जैसे किसी ने ब्रिटेन के संविधान का, तो किसी ने अमेरिका के संविधान का और किसी ने फ्रांस के संविधान का वर्णन किया है। या फिर किसी ने ब्रिटिश संसद, तो किसी ने अमेरिकी कांग्रेस का अध्ययन किया है। इन्होंने इनकी तुलना केवल समानताओं व असमानताओं का पता लगाने के लिए की है; न कि यह पता लगाने के लिए कि इनमें समानताएं व असमानताएं क्यों हैं। अतः यह कहा जाता है कि तुलनात्मक अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण केवल वर्णनात्मक है; न कि तुलनात्मक।

3. **मुख्य रूप से संकुचित (Essentially Parochial)** - परम्परागत दृष्टिकोण की तीसरी विशेषता यह है कि यह संकुचित दृष्टिकोण है, क्योंकि इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों ने केवल लोकतांत्रिक शासन-प्रणालियों अर्थात् पाश्चात्य देशों की शासन-प्रणालियों तक अपने अध्ययनों को सीमित रखा है और विश्व की अन्य शासन प्रणालियों को कम महत्व दिया है।

4. **स्थिर प्रकृति (Static nature**)- परम्परागत दृष्टिकोण को मुख्यतः स्थिर दृष्टिकोण माना जाता है, क्योंकि इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत अध्ययन केवल राजनीतिक संस्थाओं पर केन्द्रित रहे और इनमें उन तत्त्वों को सम्मिलित नहीं किया गया, जो राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। अन्य शब्दों में, इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत राजनीतिक संस्थाओं से हट कर अध्ययन नहीं हुए। इस दृष्टि से इस दृष्टिकोण को स्थिर दृष्टिकोण कहा जाता है।

5. **मुख्य रूप से प्रबन्धात्मक (Essentially Monographic)**- परम्परागत दृष्टिकोण को मुख्यतः प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण

माना जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत जो अध्ययन हुए हैं, वे किसी एक शासन-व्यवस्था या उसकी एक संस्था को आधार मानकर किए गए। इसलिए इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत होने वाले अध्ययनों को एक-विषयक अथवा प्रबन्धात्मक अध्ययन कहा जाता है।

6. **मूल्यों को प्रधानता (Emphasis on Values)** -तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत दृष्टिकोण की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इस दृष्टिकोण में मूल्यों को बहुत महत्त्व दिया गया है, जिससे इसके तहत किए गए अध्ययन आदर्शात्मक बन गए और व्यावहारिकता से हट गए।

7. **प्रधानतः कानूनी, ओपचारिक व संस्थागत (Essentially Legal, Formal and Institutional)**- परम्परागत दृष्टिकोण को कानूनी, औपचारिक व संस्थागत अध्ययन वाला दृष्टिकोण भी माना जाता है, क्योंकि इसके समर्थकों ने केवल शासन की औपचारिक कानूनी संस्थाओं का ही अध्ययन किया है।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि परम्परागत दृष्टिकोण के अन्तर्गत किए गए अध्ययन मुख्यतया अतुलनात्मक, वर्णनात्मक, आदर्शात्मक, संकुचित, स्थिर व संस्थागत अध्ययन हैं।

परम्परागत दृष्टिकोण की आलोचना (Criticism of Traditional Apporach)- राजनीतिक अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. इस दृष्टिकोण में केवल पाश्चात्य देशों के अध्ययन को महत्त्व दिया गया है अर्थात् इसमें गैर-पाश्चात्य देशों की उपेक्षा की गयी है।
2. इस दृष्टिकोण में मूल्यों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है, जित्तसे अध्ययन निष्पक्ष नहीं रह पाए हैं।
3. इसमें अध्ययन अधिकतर वर्णनात्मक रहे अर्थात् ये विश्लेषणात्मक व व्याख्यात्मक नहीं बन पाए।
4. इसमें औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन पर अत्यधिक बल दिया गया और अनौपचारिक संस्थाओं के अध्ययन की उपेक्षा की गयी।
5. इसमें शासन-व्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष पर बल दिया गया और व्यावहारिक पक्ष की अवहेलना की गयी।
6. इसने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को अन्तःशास्त्रीय अध्ययन नहीं बनने दिया।

तुलनात्मक राजनीति का व्यवस्था उपागम

प्रश्न — तुलनात्मक राजनीति का व्यवस्था उपागम।
(Describe the **System Approach** to the study of Comparative Politics.)

अथवा

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम की आलोचनात्मक विवेचना।
(Discuss criticially **David Eston's System** Approach to the study of Comparative Politics.)

उत्तर- द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के बारे में जिन नए दृष्टिकोणों का विकास हुआ, उनमें राजनीतिक व्यवस्था उपागम एक महत्त्वपूर्ण उपागम है। इस दृष्टिकोण के नाम के साथ अमेरिका के प्रसिद्ध राजनीति शास्त्री डेविड ईस्टन का नाम जोड़ा जाता है। 1953 में ईस्टन की प्रसिद्ध रचना 'दी पॉलिटिकल सिस्टम' (The Political System) प्रकाशित हुई थी। अपनी इसी रचना में ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था उपागम के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट किया है। एक अन्य विद्वान जी. आलमंड ने इस उपागम को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

डेविड ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था उपागम-सम्बन्धी अपने विचारों में सर्वप्रथम **व्यवस्था (System) शब्द की व्याख्या** की है। उसके मतानुसार (व्यवस्था एक ऐसा समुच्चय (Set) होता है, जिसके विभिन्न अंग अथवा भाग होते हैं, जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं। समूची व्यवस्था इन भागों पर निर्भर करती है और ये भाग समूची व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक व्यवस्था की

अपनी निश्चित सीमाएं होती हैं अर्थात् व्यवस्था इन सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करती हैं। संक्षेप में, प्रत्येक व्यवस्था के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं-

1. प्रत्येक व्यवस्था के कई अंग अथवा भाग होते हैं।
2. व्यवस्था के अंगों अथवा भागों में अन्त:निर्भरता पायी जाती है।
3. समूची व्यवस्था भागों पर और भाग समूची व्यवस्था पर परस्पर निर्भर होते हैं।
4. प्रत्येक व्यवस्था की सीमाएं होती हैं, जो किसी एक स्थान से प्रारम्भ होती हैं और किसी दूसरे स्थान पर समाप्त होती हैं।

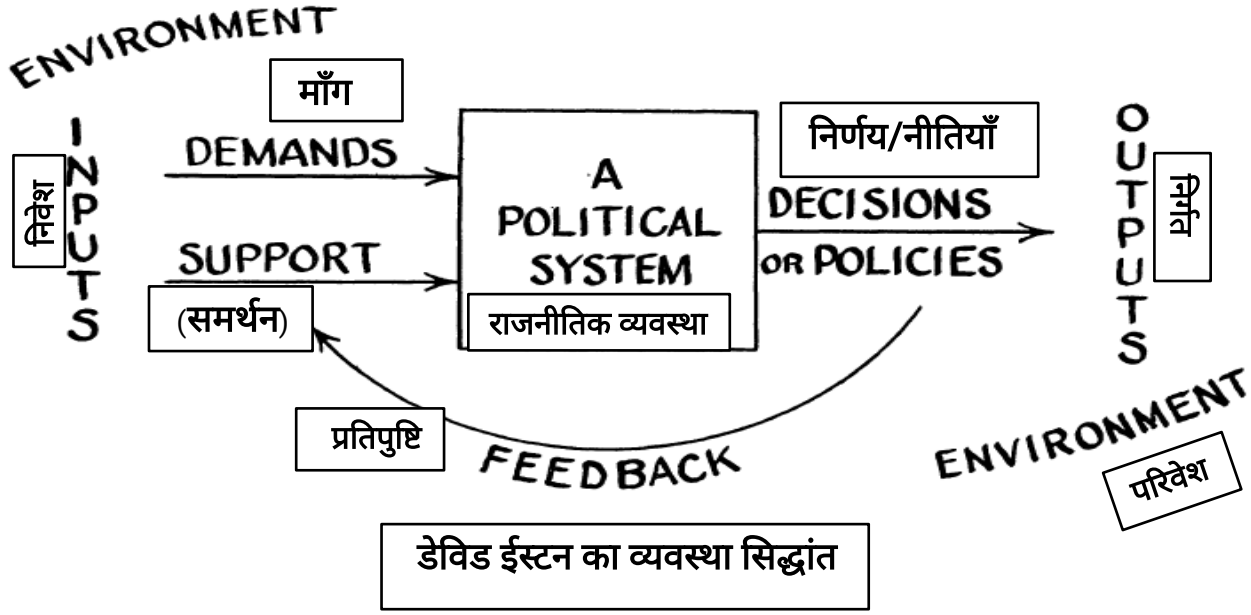

डेविड ईस्टन का व्यवस्था सिद्धांत

राजनीतिक व्यवस्था- व्यवस्था की व्याख्या करने के पश्चात् डेविड इंस्टन राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या करता है। उसकें अनुसार समाज में कई व्यवस्थाएँ पायी जाती हैं, जिनमें एक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था होती है। उसके मतानुसार राजनीति व्यवस्था वह व्यवस्था होती है, जिसके पास दंड देने की शक्ति होती है और अपनी इस शक्ति के द्वारा वह अपने आदेशों का पालन न करने वाले को दंडित कर सकती है। समाज में अन्य किसी व्यवस्था के पास यह शक्ति नहीं होती है। वस्तुतः इसी शक्ति से राज्य प्रभुसत्ता सम्पन्न बनता है।

व्यवस्या उपागम का अर्थ (Meaning of System Approach) - व्यवस्था उपागम अध्ययन का एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो राजनीतिक व्यवस्था के सम्पूर्ण अध्ययन पर बल देता है; न कि व्यवस्था के किसी एक अंग के अध्ययन करने पर, क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के समस्त अंग परस्पर जुड़े होते हैं और व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। अतः राजनीतिक व्यवस्था के अलग-अलग अंगों का अध्ययन अपूर्ण अध्ययन होगा। राजनीतिक व्यवस्था का अपना परिवेश(environment) भी होता है, जिसका व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता रहता है, अतः यह 'दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन उसके अंगों और उसके परिवेश के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।

राजनीतिक व्यवस्या का परिवेश/वातावरण (Environment of Political System)- डेविड ईस्टन का मानना है कि प्रत्येक व्यवस्था के आस-पास का वातावरण उसका परिवेश होता है। इसी प्रकार राजनीतिक व्यवस्था का भी अपना एक परिवेश होता है। यह परिवेश आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार का होता है। किसी व्यवस्था की अंदरूनी परिस्थितियाँ उसका आंतरिक परिवेश और बाहरी परिस्थतियों उसका बाहरी परिवेश कहलाती हैं। ये दोनों परिवेश राजनीतिक व्यवस्था को निरन्तर प्रभावित करते हैं।

निवेशों को निकासों में बदलने की प्रक्रिया (Process of Conversion of Inputs into Outputs) — डेविड ईस्टन मानते हैं कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में निवेशों (inputs) को निकासों(outputs) में बदलने की प्रक्रिया जारी रहती है। वह परिवेश से आने वाली मांगों (demands) को निवेश कहता है। जब यह निवेश राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश करता है, तो

व्यवस्था निवेश को निकास में बदलने का कार्य करती है, ठीक उसी प्रकार जैसे मशीन में कच्चा माल डाला जाता है और मशीन उसे पक्के माल में परिवर्तित कर देती है। राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण निवेश निकास (output) अर्थात् नीतियों (Policies) के रूप में व्यवस्था से बाहर निकलते हैं।

डेविड ईस्टन कहता है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में यह क्रिया चलती रहती है। वह कहता है कि राजनीतिक व्यवस्था में निवेश और निकासों में प्रतिपुष्टि (फीडबैक) (Feed back) के माध्यम से संबंध स्थापित किया जाता है। ईस्टन का मानना है कि जिस राजनीतिक व्यवस्था में फीडबैक (Feed back) की व्यवस्था नहीं होती है, वहाँ जनता और शात्तन में बहुत दूरी हो जाती है और अंत में वह राजनीतिक व्यवस्था क्रान्ति का शिकार हो जाती है। ईस्टन के अनुसार लोकतंत्र के इस युग में फीडबैक का कार्य राजनीतिक दल, दबाव समूह और हित समूह करते हैं। इस काम में संचार के साधनों की विशेष भूमिका होती है।

ईस्टन का कहना है कि जिस राजनीतिक व्यवस्था में संकट से निपटने की सामर्थ्य नहीं होती है, वह व्यवस्था टूट जाती है और जिसके पास संकट से निपटने की शक्ति या सामर्थ्य होता है, वह व्यवस्था स्थिर रहती है।

इस प्रकार ईस्टन प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए व्यवस्था उपागम या दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह इसके अन्तर्गत निवेश-निकास व फीडबैक को समझने की विधि भी बताता है, जिसे ईस्टन की निवेश-निकास (Inputs-outputs) की विधि कहा जाता है।

डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम की आलोचना (Criticism of David Eston's Systems Approach)-

विद्वानों ने डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है-

1. **समस्त राजनीतिक मामलों का विश्लेषण संभव नहीं (Analysis of all political matters is not possible)**-कुछ विद्वान ईस्टन के व्यवस्था उपागम की यह कहकर आलोचना करते हैं कि इस उपागम द्वारा समस्त राजनीतिक मामलों का विश्लेषण करना संभव नहीं है। हर देश की अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियाँ होती हैं और उसको शासन प्रणाली के विशिष्ट सिद्धांत (Principles) होते हैं। इस आधार पर शासन प्रणालियों में समानता नहीं होती है। अतः असमानता वाली समस्त शात्तन-प्रणालियों को एक ही उपागम द्वारा समझना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव भी है।
2. **राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों का अधूरा सिद्धांत (Incomplete Theory of the Functions of Political System)**- डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि उसने राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों के बारे में जो विचार प्रकट किया है, वह अधूरा है, क्योंकि केवल निवेशों से ही राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों का संबंध नहीं होता है। राजनीतिक व्यवस्था बहुत-से ऐसे कार्य भी करती है, जिनका निवेश से कोई संबंध नहीं होता है। जैसे विदेश नीति, सुरक्षा नीति आदि का निवेशों से कोई संबंध नहीं होता है, फिर भी ये कार्य राजनीतिक व्यवस्वा द्वारा किए जाते हैं।

3. **इस दृष्टिकोण का कोई विशेष उद्देश्य नहीं है (No Specific Aim of the Approach)**- आलोचकों का यह भी कहना है कि ईस्टन का यह उपागम किसी विशेष उद्देश्य को नहीं बताता है। यह केवल अध्ययन की एक विधि है; न कि जनता की समस्याओं का हल खोजने का साधन।
4. **किसी राजनीतिक व्यवस्था की सीमाएं निश्चित करना कठिन** (Difficult to Determine the Boundaries of a Political System)-डेविड ईस्टन के इस उपागम के बारे में आलोचकों का यह भी मानना है कि ईस्टन का यह कहना सही नहीं है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवत्त्वा की निश्चित सीमाएं होती हैं। यह यह नहीं बताता है कि इन सीमाओं को कैसे निर्धारित किया जा सकता है। आधुनिक काल में राजनीतिक व्यवस्था की सीमाओं का इतना अधिक विस्तार हो रहा है कि इनको निश्चित दायरे में नहीं बाँधा जा सकता है।

5. **कई महत्वपूर्ण तथ्यों की उपेक्षा** (Ignorance of Some Important Political Facts)-डेविड ईस्टन ने अपने इस उपागम में कई महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथ्यों की अनदेखी की है। लासवेल कहते हैं कि उसने शक्ति जैसे महत्त्वपूर्ण तथ्य को अपने इस उपागम में कोई महत्त्व नहीं दिया है। इसी प्रकार उसने यह तो कह दिया कि राजनीतिक व्यवस्था मूल्यों का

सत्तावादी वितरण ((Authoritative Allocation of Values) है, किन्तु उसने मूल्यों का कोई विवरण नहीं दिया।

निःसन्देह डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम में अनेक दोष हैं, फिर भी, यह वर्तमान समय में राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने का एक महत्त्वपूर्ण उपागम है। इस उपागम का महत्व इस बात में है कि यह राजनीतिक व्यवस्था के समग्र अध्ययन पर जोर देता है और यह दर्शाता है कि वर्तमान युग में समस्त व्यवस्थाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं, अतः इन्हें एक-दूसरे के संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

जी. ए. आमण्ड के तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का संरचनात्मक कार्यात्मक उपागम

(G.A Almond 's Structural-Functional Approach to the study of Comparative Politics.)

उत्तर-संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के आधुनिक उपागमों में से एक है। इस उपागम का जन्मदाता अमेरिकन विद्वान जी. आमण्ड को माना जाता है। उसके साथ कोलमैन ने भी इस उपागम में अपना योगदान दिया है। जी. आमण्ड और कोलमैन ने अपनी प्रसिद्ध रचना ('Politics of Developing Areas) में इस उपागम की व्याख्या की है।

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा किसी राजनीतिक व्यवस्था के संगठन(संरचना) और उसके कार्यों को समझा जा सकता है।

यह तुलनात्मक विश्लेषण की एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा हम किसी राजनीतिक व्यवत्या को उसकी संरचनाओं और प्रकायों (functions) के आधार पर अच्छी प्रकार समझ सकते हैं और अध्ययन के इसी तथ्य को आधार मानकर विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण कर सकते हैं।

इस उपागम के समर्थक-विद्वानों का मानना है कि जिस प्रकार किसी मशीन में उत्पादन करने के लिए कच्चा माल (Raw Material) डाला जाता है। ठीक उसी प्रकार किसी राजनीतिक व्यवस्था में गतिशीलता लाने के लिए जो कच्चा माल डाला जाता है, उसे इन्होंने निवेश (Input) का नाम दिया है और उत्पादन, जो राजनीतिक व्यवस्था में एक विशेष क्रिया होने पर बाहर आता है, को निकास (Output) का नाम दिया है।

इन विद्वानों का मानना है कि आधुनिक विद्वान राजनीति के इन्हीं निवेश और निक्रासों को विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में जानने का प्रयास कर रहे हैं। इन विद्वानों का मानना है कि इन्हीं निवेश और निकासों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं को विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का यह उपागम उन तत्वों व कारकों की खोज करना चाहता है, जिनके आधार पर किसी राजनीतिक व्यवस्था को स्थिर रखा जा सकता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएं (Characteristics of Structural-Functionial Approach)-

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं-

1. **सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन पर बल (Emphasis on the Study of Whole Political System)**- राजनीतिक अध्ययन के संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन पर बल देता है, न कि उसके अलग-अलग अंगों के अध्ययन पर। इस उपागम के समर्थकों का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था एक इकाई है, इसलिए इसके अलग-अलग अंगों का अध्ययन करना संभव नहीं है।

2. **संरचनात्मक प्रतिस्थापन्नता को मान्यता (Recognition of Structural Substitutibility)**- पी. वी. यंग ने इस उपागम की सबसे बड़ी विशेषता यह मानी है कि इसमें संरचनात्मक प्रतिस्थापन्नता की बात को स्वीकार किया गया है। क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में विशिष्ट सांस्कृतिक विविधताएं होती हैं, अतः यह जरूरी नहीं है कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक जैसी संरचनाएं हों। मिन्न-भिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की संरचनाएं हो सकती हैं। अतः समान कार्य को करने के लिए राजनीतिक व्यवस्थाओं में समान संरचनाओं का होना जरूरी नहीं है।

3. **विभिन्न संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अन्तःनिर्भरता (Functional Interdependence in Different Structures)**-

इस उपागम को मानने वाले विद्वानों की मान्यता है कि यद्यपि राजनीतिक व्यवस्था में अलग-अलग संरचनाएं अलग-अलग कार्य करती हैं, जैसे-विधानपालिका कानून बनाती है; कार्यपालिका कानूनों को लागू करती है और शासन चलाती है तथा न्यायपालिका न्याय का कार्य करती है, फिर भी ये संरचनाएं कार्यों के विषय में एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं।

4. **राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कार्यों की अनिवार्यता (Necessity of Functions for the Maintenance of Political System)**- यह उपागम इस बात पर जोर देता है कि कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जो प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में सम्पन्न किए जाते हैं, चाहे उनका स्वरूप कैसा भी हो और चाहे वे कार्य किसी भी संरचना द्वारा किए जाते हों। उदाहरण के लिए कानून बनाना, शासन चलाना और न्याय करना प्रत्येक शासन व्यवस्था के लिए जरूरी होता है। इन कार्यों को कोई भी संरचना कर सकती है।
5. **कार्य एवं विकार्य की अवधारणाओं को मान्यता** (Recognition of the Concept of Functions and Dis functions)-इस उपागम के अनुसार कोई संरचना एक समय एक सही कार्य कर सकती है, किन्तु वही संरचना दूसरे समय एक गलत कार्य भी कर सकती है। सही कार्य की क्रिया की कार्य कहा गया है, जब कि गलत कार्य की क्रिया को विकार्य कहा गया है। सही कार्य करने से राजनीतिक व्यवस्था मजबूत होती है और गलत कार्य करने से राजनीतिक व्यवस्था कमजोर पड़ती है। इस प्रकार यह उपागम कार्यों और विकार्यों की अवधारणाएँ स्थापित करता है।

जी. आमण्ड ने संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की अपनी दो रचनाओं 'The Politics of Developing Areas' और 'Comparative Politics: A Development Approach' में व्याख्या की है।

आमण्ड ने अपनी व्याख्या में इस बात का उल्लेख किया है कि राजनीतिक व्यवस्था क्या होती है। उसने यह विचार प्रकट किया कि प्रत्येक समाज में एक राजनीतिक व्यवस्था होती है, जिसके पास उस समाज के लिए बाध्यकारी वैद्य शक्ति होती है।

उसने राजनीतिक व्यवस्था की कई **विशेषताएं** उल्लेखित की हैं,
जैसे- (i) व्यापकता (Comprehensiveness)
(ii) अन्तः निर्भरता (Interdependence)
(iii) सीमा-रेखाएँ (Boundaries)
(iv) उन्मुक्ता अथवा खुलापन (Open System)
(v) व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं के स्थान पर व्यक्ति की भूमिकाओं की प्रतिक्रियाएं (Role Reactions of the Individual in Place of Individual Reactions).

आमण्ड ने यह भी विचार अभिव्यक्ति किया है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में कई उप-व्यवस्थाएं होती हैं। ये उप-व्यवस्थाएं कार्यों की दृष्टि से एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं और इन उप-व्यवस्थाओं के अपने संगठन होते हैं। उसके मतानुसार उप-व्यवस्थाओं का सन्तुलन जरूरी है; क्योंकि यदि इन उप-व्यवस्थाओं के मध्य सन्तुलन बना रहता है, तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य करती है।
आमण्ड अपनी व्याख्या में **राजनीतिक संरचनाओं के कार्यों** में परम्परागत कार्यों अर्थात् कानून बनाना, कानून लागू करना और न्याय करना के अतिरिक्त -
1. हित-व्यक्तिकरण (Interest-Articulation)
2. हित-एकत्रीकरण (Interest Aggregation) व
3. राजनीतिक संचार (Political Communication) को भी शामिल करता है।

आमण्ड भी डेविड ईस्टन की तरह निवेशों(inputs) को निकासों(outputs) में बदलने की प्रक्रिया को मानता है।
वह यह विचार अभिव्यक्त करता है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था स्थिर एवं परिवर्तनशील होती है। वह परिवर्तन की प्रक्रिया को आगत-निगत (Inputs-Outputs) के सिद्धान्त से समझाता है।
वह राजनीतिक **व्यवस्था के आगतों/निवेश (inputs)** में निम्नलिखित कार्यों को शामिल करता है-
1. राजनीतिक समाजीकरण और भर्ती करना।
2. हितों में अभिवृद्धि करना।

3. हितों को सामूहिक रूप प्रदान करना।
4. राजनीतिक संचार का कार्य करना।

आमण्ड राजनीतिक **व्यवस्था के निर्गतों (Outputs) में निम्नलिखित कार्यों** को शामिल करता है-
1. नियम-निर्माण (Rule Making)
2. नियम-क्रियान्वयन (Rule Application)
3. नियम-अधिनिर्णयन (Rule Adjudication)

आमण्ड इन सभी कार्यों के लिए अलग-अलग संरचनाओं की बात करता है। वह आगत कार्यों के लिए परिवार, मित्र-मण्डली, राजनीतिक दल, दबाव समूह तथा संचार के साधनों की चर्चा करता है, जब कि निर्गत कार्यों के लिए यह विधानपालिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका की चर्चा करता है। वह कहता है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में अलग-अलग संरचनाएं, अलग-अलग कार्यों को करती हैं।

आमण्ड अपने संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं और उसके कार्यों को अपने संरचनात्मक प्रकार्यात्मक मॉडल के आधार पर जानने का प्रयास करता है।
वह इन आधारों पर तुलना की बात करता है - राजनीतिक व्यवस्थाओं की क्षमता, रूपान्तरण प्रक्रिया, व्यवस्था का अनुसरण और व्यवस्था के अनुकूलन के आधार पर तुलना करने की बात करता है।
उसने पहले अपने संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के माध्यम से विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया और फिर विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में विद्यमान तथ्यों की खोज करके उनके राजनीतिक विकास को समझने का प्रयास किया। इसके पश्चात् अन्य विद्वानों ने उसके उपागम से अनेक राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की उपयोगिता/महत्व (Utility/importance of Structural-Functional Approach)

-संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की उपयोगिता के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-
1. इस उपागम के आधार पर हम सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन कर सकते हैं। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक ऐसा उपागम है, जिसके आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की आपस में तुलना की जा सकती है।
2. इस उपागम की एक उपयोगिता यह है कि यह राजनीतिक व्यवस्था के समग्र अध्ययन पर बल देता है और उसके अलग-अलग अंगों के अध्ययन को नकारता है। समग्र अध्ययन के द्वारा ही हम किसी राजनीतिक व्यवस्था को भली-भाँति समझ सकते हैं।
3. इस उपागम की यह भी उपयोगिता है कि यह राजनीतिक व्यवस्था की उप-व्यवस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धों के विचार को मानता है। इससे हम उनकी परस्पर निर्भरता को समझ सकते है।
4. यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं के वर्ग (Categories) बनाने में हमारी सहायता करता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं के वर्ग बना कर हम उनको ठीक से समझ सकते हैं।
5. यह उपागम हमें राजनीतिक व्यवस्था की कार्य-शैली और उसके परिचालन वाले तत्त्वों को समझने में सहायता देता है। यह उपागम न केवल राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं और उनके द्वारा सम्पादित कार्यों को समझने में सहायक है, बल्कि इस बात की जानकारी देने में भी सहायक है कि राजनीतिक व्यवस्थाएं कैसे चलती हैं।
6. यह उपागम यह भी स्पष्ट करता है कि किसी घटना को अकेले में नहीं, बल्कि व्यापक सन्दर्भ में समझा जा सकता है।
7. यह उपागम व्यवस्था विश्लेषण के लिए किसी सामान्य सिद्धान्त के निर्माण की आवश्यकता पर बल देता है। यह वर्तमान में तो ऐसे किसी सिद्धान्त का निर्माण संभव नहीं मानता है, किन्तु भविष्य में ऐसे सिद्धान्त की आशा रखता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की आलोचना (Criticism of Structural-Functional Approach)-

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. कुछ विद्वान इस उपागम को रूढिवादी अर्थात् परिवर्तन विरोधी मानते हैं। उनका मानना है कि यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखना चाहता है। इसके समर्थकों ने अपने अध्ययनों में उन्हीं कारकों को जानने का प्रयास किया, जिनसे विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था कायम रखी जा सके। अतः इसे परिवर्तन-विरोधी माना जाता है।

2. यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था के अनुरक्षण की बात तो कहता है, किन्तु इसका क्या पैमाना हो सकता है अर्थात् किस मानदंड के आधार पर हम यह पता लगा सकते हैं कि कोई व्यवस्था अनुरक्षित हो रही है या नहीं।

3. यह उपागम राजनीतिक संरचनाओं की परस्पर निर्भरता की बात तो करता है, किन्तु इसके किसी भी समर्थक ने यह बताने की कोशिश नहीं की कि इनकी परस्पर निर्भरता की प्रकृति क्या होगी। यह उपागम यह तो कहता है कि राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों में परिवर्तन उसकी संरचनाओं के कार्यों में परिवर्तन के कारण होता है, किन्तु यह परिवर्तन कैसे और किस प्रकार का होता है, इस बारे में यह चुप है।

4. इस उपागम से हम यह पता नहीं लगा सकते हैं कि प्रकार्य किस सीमा तक पूरे हो रहे हैं। आमण्ड ने अपनी व्याख्या में प्रकार्यों का वर्णन तो किया है, किन्तु यह नहीं बताया कि यह कैसे पता लगाया जाए कि व्यवस्था में प्रकार्य हो रहे हैं या नहीं और यदि हो रहे हैं तो किस सीमा तक हो रहे हैं।

5. यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था की स्वाभाविक संरचनाओं व संस्थाओं को महत्त्व देता है अर्थात यह आरोपित या निर्मित संरचनाओं व संस्थाओं को अध्ययन के लिए उचित नहीं मानता है, किन्तु सच्चाई यह है कि आरोपित संरचनाओं व संस्थाओं ने भी कई विकासशील देशों में न केवल राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व स्थापित किया, बल्कि विकास को भी तीव्र गति प्रदान की। उदाहरण के लिए चीन का मॉडल हमारे सामने है। आरोपित संस्थाओं के प्रति इसका पूर्वाग्रही (Biased) होना उचित नहीं है।

6. यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था की स्वायत्तता पर आवश्यकता से अधिक बल देता है। ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि आधुनिक युग में राजनीतिक व्यवस्था पर अनेक दबाव कार्य करते हैं।

निष्कर्ष-भले ही तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम में कुछ कमियाँ हों, फिर भी यह तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की ऐसी पद्धति है, जो डेविड ईस्टन के व्यवस्था उपागम की कमी की पूर्ति करती है और राजनीतिक व्यवस्था के समग्र अध्ययन पर बल देती है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण(उपागम)

प्रश्न — तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का परीक्षण कीजिए।
(Examine the Marxist Approach to the study of Comparative Politics.)

अथवा

मार्क्सवादी-लेनिनवादी ढाँचे का तुत्तनात्मक राजनीति के एक उपागम के रूप में मूल्यांकन कीजिए।
(Evaluate Marxist-Leninist framework as an approach in Comparative Politics.)

अथवा

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का आतोचनात्मक परीक्षण कीजिए।' (Critically examine the Marxist Approach to the study of Comparative Politics)

उत्तर- मार्क्सवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का एक नवीन दृष्टिकोण है। इसे मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण भी कहा जाता है यह दृष्टिकोण विश्वविख्यात राजनीति शास्त्री कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर आधारित है, जिसे रूस, चीन और यूरोप के अनेक देशों में व्यावहारिक रूप दिया गया। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् मार्क्सवादी विचारधारा के बढ़ते प्रभाव के साथ ही राजनीतिक अध्ययन के इस दृष्टिकोण को बहुत बल मिला।

तुलनात्मक राजनीति के इस दृष्टिकोण का प्रचलन निम्नलिखित **कारणों** से हुआ -
1. तुलनात्मक राजनीति के प्रचलित दृष्टिकोण राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं दे सके। इसके फलस्वरूप अध्ययन के नए दृष्टिकोण की तलाश जारी हुई और मार्क्सवादी दृष्टिकोण इसी तलाश का परिणाम है।

2. तुलनात्मक राजनीति के प्रचलित दृष्टिकोण नवोदित राज्यों की शासन प्रणालियों के अध्ययन के अनुपयुक्त माने गए। इसके कारण ऐसे दृष्टिकोण की तलाश शुरू हुई, जो इन राज्यों की शासन प्रणालियों के अध्ययन में उपयुक्त हो सके। मार्क्सवादी सिद्धान्त इसी तलाश का परिणाम है।

3. तुलनात्मक राजनीति के प्रचलित दृष्टिकोणों के आधार पर जो अध्ययन हुए, उनसे कुछ ऐसे प्रत्यय विकसित हुए, जो स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं थे। अतः राजनीति के अध्ययन के ऐसे दृष्टिकोण की खोज करना आवश्यक हो गया था, जो अध्ययन के लिए ठोस प्रत्यय प्रस्तुत कर सके और इन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित कर सके।

पाश्चात्य राजनीतिक विद्वानों ने इन्हीं कारणों से राजनीतिक विश्लेषण के लिए एक ऐसे दृष्टिकोण के लिए प्रयास शुरू किए, जो निम्नलिखित गुण लिए हुए हो-
1. जो राजनीतिक अध्ययन का सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित करने में सहायक हो।
2. जिसमें प्रत्ययों से सम्बन्धित स्पष्टता हो।
3. जिससे तुलनात्मक विश्लेषणों में स्थायित्व कायम होता हो।
4. जो विकासशील देशों की शासन व्यवस्थाओं पर विशेष रूप से लागू हो सके और उनमें होने वाले परिवर्तनों के सही संकेत दे सके।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण(उपागम) का अर्थ (Meaning of Marxist Approach)-
मार्क्सवादी दृष्टिकोण की कुछ विशिष्ट मान्यताएं हैं, जिनसे इसका अर्थ स्पष्ट होता है। ये मान्यताएं निम्नलिखित हैं-
1. मार्क्सवादी विद्वान राज्य की औपचारिक संस्थाओं को कम महत्त्व देते हैं।
2. मार्क्सवादी विद्वानों की विकासशील देशों की समस्याओं में अधिक रुचि है।
3. मार्क्सवादी विद्वान राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए समग्रवादी अध्ययन को सही मानते हैं।
4. मार्क्सवादी दृष्टिकोण की अपनी धारणाएं, मान्यताएं व पद्धतियां हैं।
5. मार्क्सवादी विद्वान सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को एक इकाई मानते हैं और इसी संदर्भ में उसे समझने का प्रयास करते हैं।
मार्क्सवादी और लेनिनवादी विद्वानों की उपर्युक्त मान्यताएं मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझने में बहुत सहायक हैं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण को मार्क्सवादी विचारधारा के माध्यम से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है।

कार्ल मार्क्स का चिन्तन निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-
(i) वह यह मानता है कि सामाजिक जीवन में आर्थिक शक्ति सर्वोच्च होती है।
(ii) वह यह मानता है कि समाज में आर्थिक शक्ति-सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्व होता है अर्थात् यही वर्ग शासन करता है।
(iii) वह यह मानता है कि राजनीतिक शक्ति आर्थिक शक्ति के अधीन होती है।

कार्ल मार्क्स की विचारधारा उपर्युक्त मान्यताओं पर आधारित है। अतः मार्क्सवादी दृष्टिकोण का वर्णन करते समय हमें उपर्युक्त मान्यताओं को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की विशेषताएं (Characteristics of Marxist Approach)-
इस दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. **प्रत्ययी स्थायित्व (Conceptual Stability)**-इस दृष्टिकोण के समर्थकों का कहना है कि तुलनात्मक अध्ययन में स्थायी प्रत्ययों(concepts) को ही चुनना चाहिए, क्योंकि तभी निष्कर्ष सही निकलते हैं। यदि प्रत्ययों का अर्थ स्पष्ट नहीं होगा, तो भ्रम की स्थिति रहेगी और निष्कर्षों में स्थायित्व नहीं आएगा।

2. **समग्रवादी पद्धति (Integrated Methodology)**-इस दृष्टिकोण में अध्ययन-कर्ता समग्रवादी पद्धति का प्रयोग करता है, क्योंकि इस पद्धति से सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। इस दृष्टिकोण के अनुसरण-

कर्ताओं का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था के अलग-अलग भागों का अध्ययन उचित नहीं है। इनका मानना है कि विकासशील देशों की शासन प्रणालियों में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों को राजनीतिक व्यवस्था के सम्पूर्ण अध्ययन के द्वारा ही समझा जा सकता है।

3. ऐतिहासिक दृष्टि से गतिशील दृष्टिकोण (Historically a Dynamic Approach)- ऐतिहासिक दृष्टि से यह गतिशील दृष्टिकोण माना जाता है। कार्ल मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या की और बताया कि आर्थिक तत्व समाज में परिवर्तन लाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वह इतिहास को आर्थिक घटनाओं की देन बताता है। वह यह मानता है कि आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आने पर राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आता है। इसलिए यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि विकासशील देशों की राजनीतिक उथल-पुथल को आर्थिक सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए। मार्क्स यह मानता है कि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले समाजों में मन्द गति से और औद्योगिक अर्थव्यवस्था वाले समाजों में तेज गति से विकास होता है। इस प्रकार यह दृष्टिकोण यह बताता है कि विकसित और अविकसित राज्यों की विकास के आधार पर तुलना करना संभव है। इस प्रकार यह ऐतिहासिक विकास का समर्थन करने वाला दृष्टिकोण है।

4. सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक ढाँचा (Socially Relevant Framework)-मार्क्सवादी दृष्टिकोण सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक ढाँचा पेश करता है। मार्क्सवादियों ने आदर्शों व कल्पनाओं का सहारा नहीं लिया है, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं को जानने और उन्हें हल करने के प्रयास किए हैं। मार्क्सवादी विद्वान मानते हैं कि शोध का ध्येय सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक होना चाहिए। इनका मानना है कि ऐसे अध्ययन सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक होने के कारण उपयोगी हो जाएंगे और कल्पना से दूर होंगे। अतः यह दृष्टिकोण सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि यह दृष्टिकोण अन्य दृष्टिकोर से भिन्न है। यह तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण का एक भिन्न दृष्टिकोण है, जिसका दूसरे विश्व युद्ध बाद प्रभाव बढ़ा है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की उपयोगिता/महत्व (Utility/importance of Marxist Approach) -

1. यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था की गतिशील शक्तियों को समझने में सहायक है। यह दृष्टिकोर उन तथ्यों की खोज करता है, जो किसी राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाते हैं।
2. यह दृष्टिकोण सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन पर बल देता है। यह राजनीतिक व्यवस्थ के किसी एक अंग के अध्ययन को महत्त्व नहीं देता है।
3. यह दृष्टिकोण प्रत्ययों के स्थायित्व को महत्त्व देता है।
4. यह दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति में अन्तःशास्त्रीय अध्ययन पर जोर देता है।
5. इस दृष्टिकोण के द्वारा विश्व में प्रचलित साम्यवादी व्यवस्थाओं का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन किया जा सकता है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचना (Criticism of Marxist Approach)- मार्क्सवादी दृष्टिकोण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. यह दृष्टिकोण आर्थिक शक्ति को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देता है।
2. इस दृष्टिकोण से सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता है।
3. कुछ विद्वानों के मतानुसार मार्क्स और लेनिन के विचार लोगों को क्रान्ति के लिए प्रेरित करते हैं।
4. यह दृष्टिकोण सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर बल देता है, जब कि वर्तमान युग में मध्य-स्तरीय अध्ययन जरूरी है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण अनुपयुक्त है। निःसन्देह सोवियत संघ के खंडित हो जाने के बाद इस दृष्टिकोण की उपेक्षा हुई है, फिर भी यह आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए एक उपयोगी दृष्टिकोण है।

(4) संविधानवाद (Constitutionalism)

प्रश्न - संविधानवाद के तत्वों का विश्लेषण कीजिए। (Examine critically the elements of Constitutionalism.)

अथवा

संविधानवाद को परिभाषित कीजिए। इसकी मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

(Define Constitutionalism. Discuss its characteristics.)

अथवा

संविधानवाद से आप क्या समझते हैं? इसके आधारों और तत्त्वों की विवेचना कीजिए।

(What do you understand by Constitutionalism? Discuss its foundations and elements.)

उत्तर- आधुनिक काल संविधानवाद का काल कहा जा सकता है, क्योंकि विश्व के अनेक देशों में संविधानवाद की अवधारणा (Concept) के अन्तर्गत शासन प्रणाली कार्य कर रही है। लोकतंत्र के बढ़ते प्रभाव के कारण संविधानवाद को बढ़ने के अवसर मिले हैं।

संविधानवाद का अर्थ (Meaning of Constitutionalism)-

संविधानवाद राजनीति विज्ञान की एक नवीन अवधारणा है। यह अवधारणा एक ऐसी विचारधारा की प्रतीक है, जिसमें शासन व्यवस्था संविधान के अन्तर्गत कार्य करती है एवं शासन कानून के अनुसार चलाया जाता है। इसमें शासन नियन्त्रित व उत्तरदायी होता है।

संविधानवाद एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें न केवन संविधान का होना जरूरी है, बल्कि सरकार का सीमित होना भी जरूरी है। ऐसी शासन-व्यवस्था लोगों के मूल्यों और आदर्शों पर आधारित होती है। इसमें कानून के शासन की सर्वोच्चता होती है और भविष्य में समाज द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयास शामिल होते हैं।

इस प्रकार संविधानवाद एक विशेष प्रकार की विचारधारा का नाम है। संविधानवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए पिनॉक और स्मिथ ने लिखा है, "संविधानवाद केवल प्रक्रिया एवं तथ्य का मामला नहीं है, बल्कि शक्ति के विशाल खण्डों का प्रभावी नियन्त्रण एवं अमूर्त एवं विस्तृत मूल्यों की प्रतिनिधिता और भावी आशाओं का प्रतीक भी है।" पिनाक व स्मिथ के विचारों से स्पष्ट होता है कि संविधानवाद की विचारधारा न केवल सरकार के नियन्त्रण का नाम है, बल्कि यह समाज के मूल्यों व आदर्शों पर आधारित शासन-प्रणाली का नाम है और इनको भविष्य में पाने का प्रयास है

कुछ विचारक संविधान और संविधानवाद में अन्तर न मानते हुए इनको एक समझ बैठते हैं, जब कि इन दोनों में बहुत अन्तर है।

संविधान और संविधानवाद में अन्तर (Difference between Constitution and Constitutionalism)-

सामान्यतया निम्नलिखित आधारों पर **संविधान और संविधानवाद में अन्तर** किया जाता है-

1. **परिभाषा के आधार पर (On the Basis of Definition)**-संविधान और संविधानवाद में परिभाषा का अन्तर पाया जाता है। संविधान कुछ ऐसे निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों के समूह को कहा जाता है, जिनका संबंध सरकार के संगठन, शक्तियों, कार्यों और जनता एवं सरकार के मध्य सम्बन्धों से होता है,
   जब कि संविधानवाद एक ऐसी विचारधारा है, जिसके अन्तर्गत सीमित शासन स्थापित किया जाता है; कानून के शासन की सर्वोच्चता होती है और जिसमें शासन उत्तरदायी होता है। अतः एक निश्चित नियमों का प्रतीक है, तो दूसरा विचारधारा का प्रतीक है।
2. **उत्पत्ति के आधार पर (On the Basis of Origin)**-संविधान और संविधानवाद में दूसरा अन्तर उत्पत्ति के आधार पर किया जाता है। संविधान का किसी निश्चित समय में निर्माण किया जाता है, जब कि संविधानवाद क्रमिक विकास का परिणाम है अर्थात् जिसका किसी निश्चित समय में निर्माण नहीं किया जाता है।
3. **प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature)** - संविधान और संविधानवाद में प्रकृति के आधार पर भी अन्तर होता है। संविधान में समाज के उद्देश्यों को प्राप्त करने की व्यवस्था होती है। अतः यह उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन के रूप में कार्य करता है। इसके विपरीत, संविधानवाद मूल्यों और आदर्शों पर आधारित विचारधारा होती है। अतः यह साध्य माना जाता है।
4. **क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Scope)**-संविधान और संविधानवाद में क्षेत्र के आधार पर भी अन्तर होता है। संविधान सीमित होता है, क्योंकि इसे एक देश में ही लागू किया जाता है, जब कि संविधानवाद एक ऐसी अवधारणा है, जिसे अनेक देशों में लागू किया जा सकता है। अतः यह एक व्यापक अवधारणा है।
5. **औचित्य के आधार पर (On the Basis of Legitimacy)**- संविधान और संविधानवाद इन दोनों में औचित्य के आधार

पर भी अन्तर होता है। संविधान का औचित्य कानूनों के आधार पर निश्चित किया जाता है, जब कि संविधानवाद का औचित्य विचारधारा के आधार पर निश्चित किया जाता है।

स्पष्ट है कि संविधान और संविधानवाद में बहुत अन्तर है। वस्तुतः संविधानवाद को प्राप्त करने का एक साधन संविधान है।

संविधानवाद के आधार (Foundations of Constitutionalism)- संविधानवाद के निम्नलिखित आधार होते हैं-

1. **संस्थाओं और प्रक्रियाओं पर सहमति (Consensus on Institutions and Procedures)**-संविधानवाद के लिए शासन संस्थाओं और इनके कार्य करने के तरीकों पर लोगों में सहमति का होना जरूरी है। जब तक किसी देश में ऐसी सहमति नहीं बनती, तब तक वहां सवैधानिक शासन स्थापित नहीं हो सकता है और बिना संवैधानिक शासन के संविधानवाद विकसित नहीं हो सकता है।
2. **विधि का शासन (Rule of Law)**- किसी राज्य में संविधानवाद के लिए कानून या विधि के शासन का होना आवश्यक है। कानून के शासन के अन्तर्गत न केवल लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाता है, बल्कि कानून का शासन, शासन को निरंकुश नहीं बनने देता है। अतः कानून का शासन संविधानवाद की अनिवार्य शर्त है।
3. **समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति (Consensus on the General Goals of the Society)**- प्रत्येक समाज के कुछ सामान्य उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों पर समाज में अधिकता सहमति पायी जाती है, क्योंकि इन उद्देश्यों की पूर्ति से सभी की भलाई होती है। अतः जब तर समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति नहीं बनती, तब तक संविधानवाद की कल्पना नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज के सामान्य उद्देश्यों का संविधान में वर्णन है। ये उद्देश्य हैं-समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना, स्वतंत्रता व समानता, न्याय व बन्धुता की भावना का विकास आदि। इन पर भारतीय समाज में आम सहमति है।
4. **गौण(छोटे) लक्ष्यों और विशिष्ट नीतिगत प्रश्नों पर सहमति (Agreement on Lesser Goals and Specific Policy questions)**- समाज के सामान्य उद्देश्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य गौण(छोटे) उद्देश्य भी होते हैं। जब तक इन पर सहमति नहीं बनेगी, तब तक समाज में शान्ति कायम नहीं होगी। कुछ ऐसे लक्ष्य होते हैं, जिनसे सभी लोगों के हितों की पूर्ति नहीं, बल्कि कुछ लोगों के हितो की पूर्ति होती है। ऐसे में जरूरी है कि बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के हितों पर सहमत हों। ऐसी स्थिति में ही संविधानवाद को विकसित होने के अवसर मिलते हैं।

संविधानवाद के तत्त्व (Elements of Constitutionalism) - पिनाक एवं स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Political Science : An Introduction' में संविधानवाद के **निम्नलिखित चार तत्त्वों** का उल्लेख किया है-

1. **संविधान अनिवार्य संस्थाओं का साकार रूप (Constitution as an Embodiment of Essential Institutions)**- संविधानवाद में देश का संविधान सभी अनिवार्य संस्थाओं को साकार रूप प्रदान करने का कार्य करता है। यह देश में विधानपालिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, नौकरशाही के संगठन और कार्यों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें इन संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का भी विवरण दिया होता है। यदि किसी संविधान में इन अनिवार्य शासन-संस्थाओं का वर्णन नहीं होता है, तो वहाँ संविधानवाद संभव नहीं होता है।
2. **संविधान राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक (Constitution as a Restraint upon Political Powers)**- संविधानवाद में शासन पर प्रतिबन्ध होना जरूरी होता है अन्यथा शासन सीमित न रहकर निरंकुश बन जाता है। संविधानवाद में देश का संविधान राजनीतिक शक्तियों अर्थात् शासन पर प्रतिबन्ध का कार्य करता है। संविधान में शासन की शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है, जिससे शासन अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं कर सकता है। संविधान में नागरिकों के अधिकार तथा राज्य के प्रति कर्तव्य निर्धारित कर दिए जाते हैं।
3. **संविधान विकास का निदेशक (Constitution as the Director of Development)—** संविधान देश में न केवल वर्तमान शासन-व्यवस्था चलाने के लिए होता है, बल्कि इसमें भविष्य की परिस्थितियों एवं परिवर्तन की भी व्यवस्था की जाती है। समय और परिस्थितियों कभी स्थिर नहीं होती हैं, समय के अनुसार देश का संविधान भी जड़ न होकर गतिशील होता है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन होता है, ताकि भविष्य की आवश्यकताओं के लिए इसमें परिवर्तन किया जा सके।
4. **संविधान राजनीतिक सत्ता का संगठक(आयोजक) (Constitution as an Organiser of Political Authority)**- संविधान देश में राजनीतिक शक्ति का संगठक भी होता है, क्योंकि संविधान द्वारा शासन की ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है,

जिससे शासन उचित लगता है और उसे वैधता प्राप्त होती है। संविधान में शासन संस्थाओं की कार्य-प्रणाली इस ढंग से दी हुई होती है कि उसे लोगों का विश्वास प्राप्त हो जाए। सरकार की वैधता के बिना संविधान का कोई महत्व नहीं होता है।

संविधानवाद की प्रकृति/विशेषताएं (Nature/Characteristics of Constitutionalism)- संविधानवाद के अर्थ, आधारों व तत्त्वों के अध्ययन से स्पष्ट है कि संविधानवाद की कुछ खास विशेषताएं होती हैं।
सामान्यत: संविधानवाद की **निम्नलिखित विशेषताएं** होती हैं-

1. **मूल्य-आधारित अवधारणा (Value-based Concept)**- संविधानवाद मूल्य-आधारित अवधारणा है। यह समाज के उन मूल्यों पर आधारित होती है, जिन्हें समाज का प्रत्येक व्यक्ति पसंद करता है। हर समाज की कुछ ऐत्ती परम्पराएं, आवश्यकताएं एवं समस्याएं होती हैं, जो इन मूल्यों को जन्म देती हैं। इन मूल्यों की स्थापना में समाज के बुद्धिजीवियों की प्रमुख भूमिका होती है। समाज अपने मूल्यों को कायम रखना चाहता है और उसी व्यवस्था को ठीक मानता है, जो समाज के मूल्यों को महत्त्व देती है। अतः संविधानवाद मूल्य-आधारित अवधारणा है।
2. **संस्कृति-संबद्ध अवधारणा (Culture-bound Concept)**-प्रत्येक देश की एक राजनीतिक संस्कृति होती है, जो देश की शात्तन-व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित करती है। राजनीतिक संस्कृति के विपरीत, शासन-प्रणाली को लोगों का समर्थन नहीं मिलता है। अतः संविधानवाद की अवधारणा देश की राजनीतिक संस्कृति से गहन रूप में जुड़ी होती है।
3. **गतिशील अवधारणा (Dynamic Concept)**- संविधानवाद एक ऐसी अवधारणा है, जो गतिशील होती है प्रत्येक समाज के मूल्य और आवश्यकताएं समय के साथ बदलते रहते हैं। इन्हीं के साथ संविधान में परिवर्तन आना जरूरी हो जाता है। यदि संविधान समय के अनुसार न बदले, तो लोग क्रान्ति पर उतर आते हैं। अतः संविधानवाद जड़ न होकर एक गतिशील अवधारणा है।
4. **समभागी अवधारणा (Shared Concept)**- संविधानवाद पर किसी एक देश का अधिकार नहीं होता है, बल्कि यह एक ऐसी विचारधारा है, जिसे कोई भी देश अपना सकता है। आज विश्व में तीन प्रकार का संविधानवाद जारी है-पाश्चात्य संविधानवाद, साम्यवादी संविधानवाद व विकासशील देशों का संविधानवाद। संविधानवाद का कोई भी रूप अनेक देशों में देखा जा सकता है। अतः संविधानवाद एक समभागी अवधारणा है।
5. **संविधान-संबद्ध अवधारणा (Constitution-related Concept)** — संविधानवाद के लिए संविधान का होना जरूरी है। बिना संविधान के संविधानवाद संभव नहीं है। संविधान द्वारा शासन नियंत्रित होता है और शासन के कार्य और उत्तरदायित्व निर्धारित होते हैं। अतः संविधान बिना संविधानवाद के संभव नहीं है।

संविधानवाद की समस्याएँ (Problems of Constitutionalism)-
संविधानवाद के सम्मुख प्रायः निम्नलिखित समस्याएँ हैं-

1. **युद्ध (War)**- युद्ध संविधानवाद के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती है। जब दो या दो से अधिक देशों के बीच युद्ध शुरू हो जाता है, तो ऐसे देशों की सरकार उस स्थिति से निकलने के लिए व्यापक शक्तियां प्राप्त कर लेती हैं। युद्ध के दौरान जनता के अधिकार समाप्त कर दिए जाते हैं और जनता को कई प्रकार की जिम्मेदारियां सौंप दी जाती हैं। युद्ध के समय शासन असीमित शक्तियां प्राप्त करके संविधानवाद का गला घोट देता है, अतः संविधानवाद के मार्ग में युद्ध एक प्रमुख समस्या है।
2. **निरंकुशवाद (Dictatorship)**- निरंकुशवाद संविधानवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा है। निरंकुशवाद के तहत शासन असीमित शक्तियां अपने पास रखता है। इसमें शासन पर कोई अंकुश नहीं होता है। आज भी विश्व के अनेक देशों में निरंकुश शासन जारी है। इन देशों में संविधान तो है, किन्तु संविधानवाद नहीं है।
3. **आपातकाल की अवस्था (State of Emergency)**- आपातकाल की अवस्था में भी शासन अधिक शक्तिया ग्रहण कर लेता है, ताकि वह आपातकाल से निबट सके। लगभग प्रत्येक देश के संविधान में आपातकाल का मुकाबला करने के लिए राजाध्यक्ष को विशेष शक्तियां देने की व्यवस्था होती है। प्रायः सरकार आपातकात में प्राप्त शक्तियों को आपातकाल समाप्त होने के पश्चात् भी अपने पास रख लेती है और निरंकुश बनी रहती है।
4. **सामाजिक व आर्थिक समस्याएं (Social and Economic Problems)**- गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक असमानता, निरक्षरता, रूढ़िवादिता आदि ऐसी सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ हैं, जिन पर काबू पाने के लिए मजबूत शासन की जरूरत होती है, ताकि शासन इन समस्याओं को हल करने के लिए कठोर कदम उठा सके। शासन की कठोर नीतियां संविधानवाद

को ठेस पहुँचाती हैं। आज विश्व के अनेक देश इन समस्याओं से जूझ रहे हैं।

5. **समाजवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद (Socialism and Internationalism)**- आज समाजवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद भी संविधानवाद के मार्ग में बाधा बने हुए हैं। रूस, चीन, वियतनाम, उत्तरी कोरिया जैसे अनेक देशों में समाजवाद को व्यावहारिक रूप दिया गया। यहाँ नागरिकों को सही मायने में अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यहाँ स्वतन्त्र न्यायपालिका भी नहीं है और न ही यहाँ कानून का शासन है। उल्टे, यहाँ शक्तियों का केन्द्रीयकरण देखने को मिलता है। यहाँ साम्यवादी दल का निरंकुश शासन कायम है और लोकतंत्र लुप्त है। ऐसी स्थिति में यहाँ सही अर्थों में संविधानवाद मौजूद नहीं है।
6. **आतंकवाद और हिंसा (Terrorism and Violence)**- आतंकवाद और हिंसा दो ऐसी भयानक समस्याएं हैं, जिनसे न केवल विकासशील देश, बल्कि विकसित देश भी ग्रस्त हैं। भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, इराक, सीरिया जैसे देश इसके प्रमुख रूप से शिकार हैं। इनसे निपटने के लिए सरकारें अधिक शक्तियां ग्रहण कर लेती हैं, जिससे शासन-शक्तियों में वृद्धि हो जाती है और शासन का सीमित स्वरूप समाप्त हो जाता है। अतः आतंकवाद और हिंसा संविधानवाद को समाप्त करते हैं।
7. **स्वतन्त्रता का गलत प्रयोग (Misuse of Freedom)**- लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में नागरिकों को अनेक प्रकार के अधिकार व स्वतंत्रता दिए जाते हैं। यदि नागरिक इनका ठीक से प्रयोग करते हैं, तो संविधानवाद को कोई खतरा पैदा नहीं होता है, किन्तु जब नागरिक इनका दुरुपयोग करने लगते हैं, तो सरकार को इसको रोकने के लिए कठोर कदम उठाने पड़ते हैं, जिनसे नागरिकों की स्वतंत्रताओं पर प्रहार होता है और संविधानवाद को चोट पहुँचती है।
8. **कल्याणकारी राज्य की धारणा (Concept of Welfare State)**- वर्तमान युग में विश्व में कल्याणकारी राज्य की धारणा जोर पकड़ती जा रही है, जिसके फलस्वरूप राज्य के कार्य बढ़ रहे हैं। स्वाभाविक है कि यदि राज्य के कार्य बढ़ेंगे, तो इसकी शक्तियां भी बढ़ेंगी और राज्य की शक्तियां बढ़ेंगी, तो संविधानवाद के लिए खतरा उत्पन्न होगा।
9. **कमजोर विधानपालिका (Powerless Legislature)**- वर्तमान समय में अनेक कारणों, जैसे-समय की कमी, दलीय प्रणाली, कठोर दलीय अनुशासन एवं कानूनों की जटिल प्रकृति, के चलते हर देश की विधानपालिका कमजोर हो गयी है। इसका परिणाम यह निकला है कि यह जन-प्रतिनिधि संस्था सरकार के अन्य अंगों पर कारगर नियंत्रण रखने में सफल नहीं है। इससे सरकार पर जनता का प्रभावशाली नियंत्रण खत्म हो गया है, जिससे संविधानवाद की विचारधारा कमज़ोर हुई है।

समस्याओं के हल के लिए सुझाव (Suggestions to Solve the Problems)- संविधानवाद की उपर्युक्त समस्याओं को हल करने के लिए निम्नलिखित **सुझाव** दिए गए हैं-

1. **लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना (**Establishment of Democratic Government)
संविधानवाद को मजबूत बनाने के लिए यह तर्क दिया जाता है कि विश्व में लोकतांत्रिक शासन स्थापित किया जाना चाहिए। शासन का यह रूप संविधानवाद के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। इसमें सरकार की सीमित शक्तिया होती हैं, क्योंकि सरकार पर जनता का नियन्त्रण होता है।
2. **आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता (Recognition to the Principle of Self determination)**- कुछ विद्वान यह तर्क देते हैं कि राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता दी जानी चाहिए। अन्य शब्दों में, किसी राष्ट्र द्वारा, अन्य देश के लोगों पर ज़ोर-जबरदस्ती शासन-प्रणाली नहीं थोपी जानी चाहिए, क्योंकि ऐसी शासन-प्रणाली को लोग स्वीकार नहीं करते हैं।
3. **राज्य द्वारा शक्ति का प्रयोग (Use of Power by State)**- संविधानवाद को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि राज्य समाज में आतंकवाद, हिंसा तथा अराजकता फैलाने वालों के विरुद्ध सख्त कदम उठाए। वस्तुतः संविधानवाद शान्तिकाल में ही पनप सकता है।
4. **सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का समाधान (Solution of Economic Problems)**- शासन को समय-समय पर पैदा होने वाली सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का हल निकालना चाहिए, ताकि जनता का शासन के प्रति विश्वास बना रहे और जनता में असन्तोष न उत्पन्न हो। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में ये समस्याएं अधिक पायी जाती हैं, क्योंकि ये देश राजनीतिक उथल-पुथल और पिछड़ेपन का शिकार बने हुए हैं। विश्व में संविधानवाद को मजबूत बनाने के लिए विकसित देशों को विकासशील देशों को मदद देनी चाहिए, ताकि वे अपनी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल कर सकें।

5. **संघवाद की स्थापना (Establishment of Federalism)**- विश्व में संघवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए,

ताकि शक्तियों का केन्द्रीयकरण न हो पाए। संघवाद में संघीय इकाइयों को स्थानीय मामलों के विषय में स्वतंत्रता दी जाती है और राष्ट्रीय महत्त्व के विषय संघ सरकार के पास रहते हैं। संघवाद की प्रवृत्ति सम्पूर्ण विश्व को एक संघ बना सकती है।

6. **संयुक्त राष्ट्र को मजबूत करना (Strengthening of U.N.)**- संयुक्त राष्ट्र को और अधिक मजबूत बनाकर विश्व में युद्धों को रोका जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र राज्यों के आपसी विवादों का हल संवैधानिक तरीकों से निकाल सकता है। मजबूत संयुक्त राष्ट्र विश्व में शान्ति एवं सुरक्षा को कायम कर सकता है।

7. **शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को मान्यता (Recognition to the Principle of Peaceful Co-existence)**- यदि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में लागू हो जाए, तो इससे राज्यों के मन से भय अथवा असुरक्षा का भाव खत्म हो जाएगा। राज्य 'जीयो और जीने दो' के मार्ग पर चलकर विश्व शान्ति को बढ़ा सकते हैं और विश्व में जारी संघषों एवं तनाव को समाप्त कर सकते हैं।

संविधान का विकास (development of constitutionalism) —

संविधानवाद एक ऐसी अवधारणा है जो किसी निश्चित समय पर उत्पन्न नहीं हुई है, बल्कि इसका निरन्तर विकास हुआ है। इसके विकास का एक लम्बा इतिहास है। इसके इतिहास को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. **यूनानी संविधानवाद (Greek Constitutionalism)**- संविधानवाद के इतिहास में सर्वप्रथम यूनानी संविधानवाद का स्थान आता है, क्योंकि विश्व में सबसे पहले यूनान में संविधानवाद का उदय हुआ। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व में सबसे पहले यूनान में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का प्रचलन हुआ। वहाँ लोकतंत्र में लोग प्रत्यक्ष रूप से शासन में भागीदार होते थे। वे स्वयं कानून-निर्माण और निर्णय लेने का कार्य करते थे। यूनान में पहले छोटे-छोटे राज्य होते थे, जिन्हें नगर-राज्य (City-State) कहा जाता था। यूनान में स्पार्टा को छोड़कर सभी नगर-राज्यों में लोकतंत्र पद्धति थी। धीरे-धीरे यूनान के नगर-राज्य पतन के शिकार हुए और वहाँ भीड़तन्त्र का जन्म हुआ, जिसका वर्णन प्लेटो और अरस्तू के ग्रंथों में मिलता है। भले ही ये नगर-राज्य समय के साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाए और आपस में लड़-झगड़ कर मिट गए, किन्तु इन्होंने विश्व को सीमित शासन का पाठ पढ़ाया और संविधानवाद की धारणा को जन्म दिया।

2. **रोमन संविधानवाद (Roman Constitutionalism)**- संविधानवाद के विकास के इतिहास में दूसरे स्थान पर रोमन संविधानवाद आता है। यूनान में नगर-राज्यों के ध्वस्त हो जाने के पश्चात् यूरोप में रोमनों के अधीन एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसे इतिहास में 'Great Roman Empire' के नाम से जाना जाता है। रोम के शासकों ने अपने साम्राज्य के लिए संविधान का विकास किया, जिसका उन्होंने सरकार के निर्धारित उपकरण के रूप में प्रयोग किया। 500 ई.पू. के आस-पास राजतंत्र की समाप्ति पर एक ऐसे गणराज्य का उदय हुआ, जिसका एक मिश्रित संविधान था। इस युग में सीनेट को व्यापक कानूनी शक्तियां प्राप्त थीं। यह संस्था समाज के कुलीन लोगों का प्रतिनिधित्व करती थी। इसके अतिरिक्त भूमि या जनजातियों के विभाजन के आधार पर तीन अन्य संस्थाएं भी थीं, जिनमें लोकतांत्रिक तत्त्व विद्यमान थे। इस काल में रोम में सीमित शासन की स्थापना हुई और एक संविधान का निर्माण भी हुआ, जिसमें सरकार की संरचनाओं और उनकी शक्तियों का उल्लेख किया गया। इस युग में कानून का संहिताकरण किया गया और सरकार के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का भी निर्माण हुआ लम्बे समय तक रोम की शासन व्यवस्था, रोमन कानून और सीमित शासन का सिद्धान्त विश्व को प्रभावित करता रहा।

3. **मध्ययुगीन संविधानवाद (Medieval Constitutionalism)**- छठी शताब्दी में रोम का महान साम्राज्य टूट गया और इसके स्थान पर कई सामन्ती राज्यों (Feudal States) की स्थापना हुई। प्राचीन रीति-रिवाजों के आधार पर टयूहानों ने नए विचार प्रदान किए, जिन्होंने राजा के अधिकारों पर अंकुश लगा दिया। बाद में सामन्ती युग विकेन्द्रीयकरण और विघटन का युग बन गया। इस युग में प्रत्येक सरदार ने अपने आप को राजा बताया और स्वयं युद्ध और व्यापार का संचालन किया। इस प्रकार मध्य युग में राजा की स्थिति कमजोर रही, क्योंकि उस पर सरदारों का अंकुश रहा। इसी युग में ईसाइयत (Christianity) का प्रभाव बढ़ा और कुछ विचारकों ने अपने चिन्तन में राज्य की सत्ता के ऊपर धर्म की सत्ता को स्थापित किया और रोम के चर्च के पोप को राजा से ऊपर माना गया। लेकिन आगे चलकर राजा और धर्म-गुरुओं में सर्वोच्चता के लिए संघर्ष हुआ। इस संघर्ष ने राष्ट्र-राज्यों को जन्म दिया। ब्रिटेन, फ्रांस व स्पेन में संवैधानिक शासन की स्थापना हुई।

वस्तुतः यहीं से संविधानवाद का प्रारम्भ हुआ।

4. पुनर्जागरण काल का संविधानवाद (Constitutionalism of the Renaissance Period)- मध्य युग के पश्चात् पुनर्जागरण का युग शुरू हुआ। यह युग 14वीं शताब्दी के अन्त के साथ शुरू हुआ। इस युग की प्रमुख देन यह है कि इस युग में राष्ट्र-राज्य की अवधारणा का जन्म हुआ और फिर से राजतंत्र का युग शुरू हुआ। वस्तुतः यह निरंकुश राजतंत्र का युग था और इस युग में संविधानवाद का प्रायः अन्त हो गया था, किन्तु इस युग में बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति आ गयी थी। इस युग के निरंकुश शासकों ने अपने शासन के विरुद्ध क्रान्ति के बीज बो दिए थे। अब उसके देशों में जनता ने अपने अधिकारों की माँग की और इसकी शुरुआत ब्रिटेन से हुई। धीरे-धीरे इसने अमेरिका और फ्रांस आदि देशों को अपनी लपेट में ले लिया, जिससे संविधानवाद का मार्ग फिर से खुल गया।

5. ब्रिटेन में संविधानवाद (Constitutionalism in Britain)- 1688 में ब्रिटेन में शानदार क्रान्ति हुई, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ पर निरंकुश राजतन्त्र की समाप्ति और संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी। यहीं से ब्रिटेन में संविधानवाद की शुरूआत हुई, जो आगे बढ़ती चली गयी। 1911 में ब्रिटेन में लाई सभा जो कुलीन लोगों का सदन है, की शक्तियों में कटीती की गयी। बाद में 1949 में इस सदन को कॉमन सभा की तुलना में और अधिक कमजोर कर दिया गया। ब्रिटेन में धीरे-धीरे मंत्रिमण्डल मजबूत बनता गया। आज यह ब्रिटिश शासन की एक शक्तिशाली संस्था है, किन्तु यह अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी है। 1832, 1867 और 1884 के सुधार कानूनों से संसद में सुधार किया गया और मताधिकार का विस्तार कर दिया गया। आज यहाँ सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त प्रचलित है।
पुनर्जागरण के पश्चात् 17वीं, 18वीं व 19वीं शताब्दी में ब्रिटेन में संविधानवाद के लिए कई कदम उठाए गए। अनेक देशों ने ब्रिटेन के उदारवादी लोकतान्त्रिक शासन की नकल की है। ब्रिटेन यूरोप का ही नहीं, बल्कि विश्व का अकेला ऐसा देश है, जिसने संविधानवाद के लिए सबसे अधिक योगदान दिया है। वस्तुतः संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा ब्रिटेन की ही देन है।)

6. फ्रांस में संविधानवाद (Constitutionalism in France)- फ्रांस ब्रिटेन के बढ़ते संविधानवाद के प्रभाव से नहीं बच पाया। वहाँ 1789 में सम्राट के निरंकुश शासन के विरुद्ध क्राति हुई और लोकतंत्र की स्थापना हुई। वहाँ संविधान तैयार किया गया और उसके अनुसार शासन का रूप निर्धारित हुआ (1789 में ही फ्रांस की असेम्बली में Declaration of Human Rights की आवाज गूंजी। फ्रांस में 1789 की क्रांति के पश्चात् गणराज्य की स्थापना हुई और संसदीय लोकतंत्र कायम हुआ। फ्रांस में कई बार संविधान बदला गया। यहाँ संविधानों द्वारा शासन का रूप भी बदला गया। 1958 के संविधान के अनुसार फ्रांस में मजबूत राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गयी और प्रधानमंत्री व मंत्रिमण्डल को कमजोर बनाया गया। इसी के साथ संसद को भी पहले के मुकाबले में कमजोर बनाया गया। इस प्रकार पहले तो फ्रांस में संविधानवाद ब्रिटेन के पदचिह्नों पर स्थापित हुआ, किन्तु बाद में यह अपने ही प्रकार का स्थापित हुआ। निःसन्देह आज फ्रांस में ब्रिटेन की तरह संसदीय लोकतंत्र मौजूद नहीं है, किन्तु वहाँ संवैधानिक सरकार है; लोगों को अधिकार व स्वतंत्रता प्राप्त हैं; स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था है; जनप्रतिनिधि संस्थाएं हैं।

7. अमेरिका में संविधानवाद (Constitutionalism in America)- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अमेरिका में 1789 में नया संविधान बनाया गया। इस संविधान के निर्माताओं पर फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वानों रूसो और मॉन्टेस्क्यू के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने सीमित शासन की स्थापना के लिए शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) की संविधान में व्यवस्था की, किन्तु साथ में अवरोध एवं सन्तुलन की भी व्यवस्था की, ताकि शासन का एक अंग दूसरे अंग पर नियंत्रण रख सके और कोई भी अंग निरंकुश न बन सके। इसके साथ ही अमेरिका में नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी। साथ में संविधान में कानून की उचित प्रक्रिया (Due Process of Law) द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि अमेरिका में सरकार कोई भी गलत कार्य न करे। वहाँ सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार दिया गया है, जिसके तहत वह कांग्रेस के किसी कानून और कार्यपालिका के किसी आदेश को संविधान के विरुद्ध होने पर अवैध घोषित कर सकता है। अमेरिका में न्यायपालिका की स्वतंत्रता की भी व्यवस्था की गयी है, ताकि लोगों को निष्पक्ष एवं स्वतंत्र न्याय मिल सके। अमेरिका में गणतांत्रिक शासन प्रणाली स्थापित की गयी है और शासन की शक्ति का स्रोत जनता को बताया गया है। वहाँ कानून का शासन भी है। इस प्रकार अमेरिका में संविधानवाद का वही रूप है, जो आधुनिक संविधानवाद का है।

8. **प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् संविधानवाद (Constitutionalism after First World War)**- प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् विश्व में संविधानवाद के बढ़ते प्रभाव को कुछ सीमा रोक दिया गया। रूस की साम्यवादी क्रांति के पश्चात् यहाँ 1917 में समाजवादी व्यवस्था लागू की गयी, जिसमें राज्य का एकाधिकार स्थापित किया गया और राज्य को नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन को नियंत्रित करने का पूरा अधिकार दिया गया। यहाँ साम्यवादी दल की तानाशाही लागू की गयी और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया गया और नागरिकों को नाम मात्र के अधिकार दिए गए। दूसरी ओर जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी की सरकारें गठित हुयीं। इन देशों की शासन-व्यवस्थाओं ने लोकतंत्र को चुनौती दी। इस युग की महत्त्वपूर्ण घटना राष्ट्र संघ (League of Nations) की स्थापना थी। इस संस्था ने विश्व को आपसी झगड़े को संवैधानिक ढंग से हल करने का विचार दिया, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय संविधानवाद का जन्म हुआ।

9. **दूसरे विश्व-युद्ध के पश्चात् संविधानवाद (Constitutionalism after Second World War)**- दूसरे विश्व युद्ध के कारण विश्व राजनीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस युद्ध में जर्मनी, इटली, जापान आदि साम्राज्यवादी शक्तियां परास्त हुयीं और लोगों का लोकतांत्रिक शासन में विश्वास बढ़ा। दूसरे, इस युद्ध के कारण सोवियत संघ नामक राज्य एक मजबूत शक्ति के रूप में उभरा और इसकी साम्यवादी शासन-प्रणाली को यूरोप के कई देशों में अपनाया गया। 1949 में चीन में भी साम्यवादी शासन की स्थापना की गयी। ऐसे में विद्वान रूस की संविधानवाद की नवीन विचारधारा पर गंभीर रूप से सोचने लगे। इससे पाश्चात्य संविधानवाद को चुनौती मिली। तीसरे, दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में अनेक स्वतन्त्र राज्य अस्तित्व में आए, जिन्हें विकासशील राज्यों का नाम दिया गया। इन राज्यों में कुछ ने अमेरिकी शासन की नकल की, तो कुछ ने ब्रिटिश शात्तन की और कुछ ने दोनों की शासन-व्यवस्थाओं की नकल की, जैसे भारत में ब्रिटिश शासन की विशेषताओं के साथ अमेरिकी शासन की विशेषताओं को भी अपनाया गया। वहीं पाकिस्तान में कभी अमेरिका, तो कभी ब्रिटिश शासन पद्धति को स्वीकारा गया। विकासशील देशों में संविधानवाद आज भी एक समस्या बना हुआ है।

संविधानवाद के विभिन्न प्रकार (Define Constitutionalism)—

आधुनिक युग में संविधानवाद के जो रूप प्रचलित हैं, उनके आधार पर हम संविधानवाद की अवधारणाओं को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं- (I) संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा, (II) संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा, एवं (III) संविधानवाद की विकासशील राज्यों की अवधारणा। इन सभी का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

1. **पाश्चात्य अवधारणा (Western Concept)**- संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा सबसे प्राचीन अवधारणा है। इसे उदार लोकतंत्रों की विचारधारा भी कहा जाता है। इस अवधारणा का प्रचलन सर्वप्रथम पाश्चात्य देशों में हुआ और फिर धीरे-धीरे यह अन्य देशों में विकसित हुई। ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका आदि देशों में उदार लोकतंत्र की विचारधारा पनपी और उसके आधार पर वहाँ शासन प्रणालियाँ स्थापित की गयी। संविधानवाद की इस विचारधारा के अनुसार देश में ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए, जो स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोक-कल्याण के साध्यों को प्राप्त कर सके और जिसकी पूर्व-शर्ते लोकतांत्रिक ढंग से संगठित सरकार, प्रतिनिधियात्मक सरकार, बहुल समाज व खुला समाज हों। पाश्चात्य देशों में इसी प्रकार की शासन-प्रणाली का प्रचलन हुआ और वहाँ जो संविधानवाद की धारणा पनपी, उसे ही पाश्चात्य संविधानवाद की अवधारणा कहा जाता है।

2. **साम्यवादी अवधारणा (Communist Concept)**- 1917 की क्राति के पश्चात् रूस में एक नई शासन-प्रणाली का प्रचलन हुआ। यह शासन-प्रणाली प्रसिद्ध विद्वान कार्ल मार्क्स की विचारधारा पर आधारित थी। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में तेजी से तत्कालीन सोवियत संघ पर आधारित शासन-प्रणाली के विचार को बल मिला और चीन व यूरोप के अन्य देशों में सोवियत संघ की शासन प्रणाली के अनुसार शासन स्थापित हुए। इससे शासन के एक नवीन विचार को महत्त्व मिला, जिसे आज साम्यवादी संविधानवाद कहा जाता है। संविधानवाद की यह अवधारणा एक ऐसी शासन प्रणाली पर बल देती है, जिससे मजदूर वर्ग की तानाशाही के माध्यम से पूंजीवाद को समाप्त किया जा सके और उत्पादन व वितरण के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व स्थापित किया जा सके। इस अवधारणा के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार शासन चलाया जाता और शासन एवं समाज को इसके अनुरूप ढाला जाता है। इस शासन प्रणाली में व्यक्ति के अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक बल दिया जाता है और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को समाप्त किया जाता है। संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा का दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् प्रभाव बढ़ा, क्योंकि सोवियत संघ थोड़े समय में ही एक

प्रभावशाली देश बन गया था, जब कि दूसरे विश्व युद्ध में सर्वाधिकारवादी विचारधारा वाले जर्मनी, इटली, जापान हार गए थे। अतः फासिस्टवादी विचारधारा की पराजय के पश्चात् रूस की विचारधारा का प्रभाव बढ़ना स्वाभाविक था। यद्यपि 1991 में सोवियत संघ के विघटित हो जाने से संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा को ठेस लगी है, फिर भी इसको आज भी विश्व में स्वीकारा जाता है।

3. विकासशील राज्यों की अवधारणा (Concept of Developing States)- दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका के महाद्वीपों में अनेक नए राज्यों का उदय हुआ, जिन्हें विकासशील अथवा नवोदित राज्यों का नाम दिया गया। इन राज्यों में अलग-अलग शासन-प्रणालियों को अपनाया गया। कुछ राज्यों में पाश्चात्य मॉडल को अपनाया गया, तो कुछ में अमेरिकी मॉडल को और कुछ अन्य में दोनों के मिश्रित मॉडल को अपनाया गया। इन राज्यों में एक समान प्रकार की शासन-प्रणाली विकसित नहीं हो पायी। इन राज्यों ने विकास के लिए शासन के अलग-अलग मॉडलों को अपनाकर देखा है, इसीलिए इनमें राजनीतिक अस्थिरता का दौर चल रहा है। आज भी इन राज्यों में संविधानवाद एक समस्या बना हुआ है। आज इन राज्यों में संविधान का अपना एक अनोखा रूप देखने को मिलता है, जिसे हम संविधानवाद का मिश्रित रूप कह सकते हैं।

(5) शक्ति, सत्ता व औचित्यता
(Power, Authority and Legitimacy)

शक्ति की परिभाषा , इसके प्रकार और स्रोत , प्रमुख विशेषताओं का वर्णन।

उत्तर —शक्ति राजनीतिक विज्ञान की एक प्रमुख अवधारणा है। राज्य और व्यक्ति के जीवन में शक्ति का विशेष महत्त्व होता है। शक्ति के द्वारा ही राज्य अपने नागरिकों पर शासन करता है और कानूनों का उल्लंघन करने वालों को दंडित करता है। शक्ति से ही राज्य अपनी सुरक्षा करता है।

विद्वानों ने प्रारंभ से ही शक्ति का अध्ययन किया है। प्राचीन काल में प्लेटो, अरस्तू, मैकियावली, हॉब्स आदि विद्वानों ने शक्ति का अध्ययन किया। आधुनिक काल में मैक्स वेबर, कैटलिन, लासवेल, राब्सन, ब्रेण्ड रसेल, मेरियम, मार्गेन्थो तथा राबर्ट डैहल ने भी व्यापक रूप से शक्ति का अध्ययन किया है। आधुनिक विद्वानों ने शक्ति को राजनीति का केन्द्र-बिन्दु माना है। कैटलिन ने शक्ति का महत्त्व बताते हुए लिखा है कि "राजनीति शक्ति का विज्ञान है'। अतः शक्ति को समझे बिना राजनीति को समझना कठिन है।

शक्ति का अर्थ और परिभाषाएं (Meaning and Definitions of Power)- विद्वान अपने-अपने दृष्टिकोण से शक्ति को परिभाषित करते हैं; जैसे-

1. मैकाइबर के अनुसार, "शक्ति से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों या वस्तुओं के व्यवहार को नियंत्रित, विनियमित और निर्देशित करने की क्षमता से है।"

2. मॉर्गेन्थो के अनुसार, "शक्ति से हमारा अभिप्राय एक-दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्धों में दूसरे व्यक्तियों के मस्तिष्कों तथा कार्यों को प्रभावित करने की क्षमता से है।"

3. राबर्ट डहल के अनुसार, "शक्ति की परिभाषा प्रायः प्रभाव की एक विशेष स्थिति के रूप में की जाती है, जिसमें आज्ञा का अनुपालन न करने पर भारी हानि उठानी पड़ती है।"

शक्ति का सामान्य अर्थ— शक्ति व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की वह क्षमता है, जिसके आधार पर वह दूसरों से अपनी आज्ञा का पालन करा सकता है और आज्ञा न मानने वालों को दण्डित कर सकता है।

शक्ति की विशेषताएं (Characteristics of Power)—

1. **दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने की योग्यता** (Ability to Influence the Behaviour of Others)- शक्ति की प्रमुख विशेषता यह होती है कि शक्ति के द्वारा कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है; उनसे अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकता है और यदि दूसरे व्यक्ति उसकी बात को न मानें, तो वह उन्हें धमकी दे सकता है और दंडित तक कर सकता है।

2. **हानि पहुँचाने की धारणा निहित (Involvement the Idea of Deprivation)**- शक्ति को दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें यह विचार निहित होता है कि यदि शक्तिधारक की बात नहीं मानी गयी, तो व्यक्तियों को भारी हानि उठानी पड़ेगी। जब अमेरिका की बात को सद्दाम हुसैन ने नहीं माना, तो अमेरिका ने इराक पर युद्ध थोप दिया और इराक को इस युद्ध में भारी हानि उठानी पड़ी।

3. **मानवीय सम्बन्धों का विशिष्ट रूप** (Specific Kind of Human Relationship)- शक्ति मानवीय सम्बन्धों का विशिष्ट रूप होती है। शक्ति के द्वारा शक्तिधारक और शक्ति का पालन करने वालों में विशेष सम्बन्ध स्थापित होता है शक्ति का पालन करने वाले शक्तिधारक की बात को मानते हैं। इन सम्बन्धों में एक आदेश देता है और दूसरा आदेश की पालना करता है।

4. **शक्ति उद्देश्यपरक होती है** (Power has a purpose)- शक्ति की एक विशेषता यह होती है कि शक्ति के साथ उद्ददेश्य जुड़ा होता है किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए शक्ति का प्रयोग किया जाता है। कारगिल से घुसपैठियों को बाहर करने के लिए भारतीय सेनाओं को कारगिल में कार्रवाई करनी पड़ी थी। अतः शक्ति के साथ हमेशा कोई-न-कोई उद्देश्य जुड़ा होता है।

5. **शक्ति के दो पक्ष (Two Aspects of Power)**- शक्ति के दो पक्ष होते हैं- वास्तविक शक्ति और सम्भावित शक्ति। इन्हीं रूपों के आधार पर हम किसी व्यक्ति या राष्ट्र की शक्ति का विश्लेषण कर सकते हैं। वास्तविक शक्ति उस शक्ति को कहा जाता है, जिसका धारक द्वारा वास्तव में प्रयोग किया जाता है, जब कि सम्भावित शक्ति यह शक्ति है, जिसका शक्तिधारक प्रयोग कर सकता है।

6. **शक्ति का भौतिक रूप नहीं होता** (Power is not Material)- शक्ति कोई भौतिक वस्तु नहीं है, जिसे नापा-तीला जा सके। यह तो एक अमूर्त भावना या विचार होता है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, इसका कोई आकार नहीं होता है।

7. **शक्ति स्थितिपरक होती है** (Power is Situational)- शक्ति पद और स्थिति पर निर्भर करती है। जब तक व्यक्ति किसी पद पर आसीन होता है, तब वह शक्ति का प्रयोग करता है। इसके साथ ही, वह अपने क्षेत्र में ही शक्ति का प्रयोग कर सकता है। जब तक कोई व्यक्ति मंत्री होता है, वह शक्ति प्रयोग करता है, लेकिन जब वह मंत्री नहीं रहता है, तब उसके पास शक्ति भी नहीं रहती है।

8. **शक्ति सापेक्ष होती है** (Power is Relative)- शक्ति की एक अन्य विशेषता यह है कि शक्ति सापेक्ष होती है। इसका अर्थ यह है कि शक्तिधारक दूसरों पर ही अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करता है, वह स्वयं भी किसी की शक्ति को मानता है। दूसरे, उसकी शक्ति किसी विशेष क्षेत्र में हो सकती है; सभी क्षेत्रों में नहीं। उदाहरण के लिए कालेज के प्राचार्य की शक्ति अपने कॉलेज में हो सकती है; अन्य कॉलेजों में नहीं।

9. **प्रयोग पर निर्भरता (Dependence on Exercise)**- शक्ति की अन्य विशेषता यह है कि यह प्रयोग पर निर्भर करती है कोई व्यक्ति कितना शक्तिशाली है, इसका पता शक्ति के प्रयोग से लगता है। यदि किसी व्यक्ति को कानून द्वारा शक्ति प्राप्त है, किन्तु वह इसका प्रयोग नहीं करता तो हम उसे शक्तिशाली नहीं कह सकते हैं। भारत का संविधान राष्ट्रपति को बहुत शक्ति प्रदान करता है, किन्तु उसकी शक्ति का प्रयोग प्रधानमंत्री और उसका मंत्रिमण्डल करता है। इसी कारण भारत में प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल शक्तिशाली है; न कि राष्ट्रपति।

10. **वैधता की अवधारणा (Concept of Legitimacy)**- शक्ति के साथ वैधता की अवधारणा जुड़ी है। यदि शक्ति को

वैधता प्राप्त हो जाती है, तो शक्ति प्रभावशाली हो जाती है। यहाँ वैधता का अर्थ लोगों की स्वीकृति से होता है। अतः जब किसी शक्तिधारक को जन-स्वीकृति मिल जाती है, तो उसकी शक्ति वैध हो जाती है।

11. **शक्ति के लिए विरोधी हितों का होना (Presence of Conflicting Interests)**- शक्ति की एक विशेषता यह है कि शक्ति के लिए परस्पर विरोधी हितों का होना आवश्यक होता है, क्योंकि यदि विरोधी हित नहीं होंगे, तो शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं होगी।

12. **परिवर्तनशीलता (Dynamic Nature)**- शक्ति की एक विशेषता यह भी है कि यह परिवर्तनशील होती है। शक्ति अपने स्रोतों पर निर्भर करती है और जब इसके स्रोत बदल जाते हैं, तो शक्ति भी बदल जाती है; जैसे-लोकतान्त्रिक शासन में कभी एक दल की सरकार बनती है, तो कभी दूसरे दल की। अतः शक्ति हमेशा स्थिर नहीं रहती है।

13. **मूल्यांकन करने में कठिनाई (Difficulty in Evaluation)** -शक्ति एक भावना या विचार है, अतः इसको मापना या इसका मूल्यांकन करना कठिन है। हम यह पता नहीं लगा सकते हैं कि अमुक व्यक्ति के पास कितनी शक्ति है।

14. **वास्तविक शक्तिधारक की पहचान करना कठिन (Difficul to Identify Real Power holder)** -शक्ति की एक विशेषता यह भी है कि वास्तविक शक्तिधारक का पता लगाना कठिन होता है। कई बार शक्तिधारक दिखायी कोई देता है, लेकिन पर्दे के पीछे वास्तव में शक्ति का प्रयोग कोई अन्य कर रहा होता है। लोकतंत्र में वास्तविक शक्ति किसके पास होती है, यह पता लगाना बहुत कठिन है।

शक्ति के प्रकार (Kinds of Power)-

राबर्ट डहल, बीयर, मैक्स वेबर, डेविड ईस्टन, डी.एस. बर्गर आदि विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से शक्ति के प्रकार बताए हैं। आमतौर पर शक्ति के निम्नलिखित रूप (प्रकार) होते हैं-

1. **वंशानुगत शक्ति (Hereditary Power)**- जब किसी शक्तिधारक को वंशानुगत आधार पर शक्ति मिलती है, तो ऐसी शक्ति वंशानुगत शक्ति कहलाती है। राजा के बड़े पुत्र को राजा बनने का अधिकार वंशानुगत आधार पर मिलता है।

2. **कानूनी या औपचारिक शक्ति (Legal Power)** - व्यक्ति को जो शक्ति कानून द्वारा दी जाती है, उसे कानूनी शक्ति कहा जाता है। भारत में राष्ट्रपति को संविधान द्वारा शक्तियां दी गयी हैं, अतः राष्ट्रपति की शक्तियों को हम कानूनी शक्ति कहेंगे।

3. **गैर-कानूनी या अनौपचारिक शक्ति (Illegal Power)**- जब कोई व्यक्ति गैर-कानूनी ढंग से शक्ति प्राप्त करता है, तो उसकी शक्ति को हम गैर-कानूनी शक्ति कहेंगे। पाकिस्तान में जनरल परवेज मुशर्रफ ने पहले गैर-कानूनी ढंग से शक्ति प्राप्त की थी, किन्तु बाद में उसने जनता की स्वीकृति से उसे कानूनी रूप दे दिया था।

4.**औचित्यपूर्ण शक्ति (Legitimate Power)**-वह शक्ति जो उचित अथवा कानूनी होती है, उसे औचित्यपूर्ण शक्ति कहा जाता है। भारत में जो भी दल चुनाव में बहुमत प्राप्त करके शक्ति प्राप्त करता है, उसकी शक्ति को हम औचित्यपूर्ण शक्ति कहेंगे।

5. **अनौचित्यपूर्ण शक्ति (Illegitimate Power)**- जो शक्ति अनुचित होती है अर्थात् जिसे जनता की स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है, वह शक्ति अनौचित्यपूर्ण शक्ति होती है। तानाशाह की शक्ति अनौचित्यपूर्ण होती है।

6. **दैवीय शक्ति (Divine Power)**- वह शक्ति जो ईश्वर द्वारा दी जाती है, उसे हम दैवीय शक्ति कहते हैं। प्राचीनकाल में राजा अपनी शक्ति को दैवीय शक्ति की संज्ञा देते थे और वे दैवीय अधिकारों के सिद्धान्त की वकालत करते थे। वर्तमान युग में दैवीय शक्ति के विचार को नहीं माना जाता है।

7. **करिश्मावादी शक्ति (Charismatic Power)**- करिश्मावादी शक्ति व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। कुछ नेता ऐसे होते हैं, जो दूसरों पर करिश्मावादी प्रभाव छोड़ते हैं। महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण, सुभाष चन्द्र बोस, नेल्सन मण्डेला, माओ-त्से-तुंग, और लेनिन के पास करिश्मावादी शक्ति थी।

8. **बौद्धिक शक्ति (Intellectual Power)**- यह शक्ति व्यक्ति की शिक्षा पर आधारित होती है। वैज्ञानिक, इंजीनियरों, शिक्षकों और वकीलों के पास शक्ति, बौद्धिक शक्ति कहलाती है। नोबत पुरस्कार विजेता सी. वी. रमण, राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन के पास भी बौद्धिक शक्ति थी। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के पास बौद्धिक शक्ति थी।

9. **सैनिक शक्ति (Military Power)**-वह शक्ति, जिसे राज्य बाहरी आक्रमणों से स्वयं की रक्षा के लिए प्रयोग करता है, उसे सैनिक शक्ति कहते हैं। यह सेना, सैनिक तकनीकों और हथियारों की शक्ति पर आधारित होती है। आधुनिक समय में परमाणु शक्ति प्रमुख सैनिक शक्ति मानी जाती है।

10. **राष्ट्रीय शक्ति (National Power)**- वह शक्ति जिसके आधार पर एक राज्य दूसरे राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करता है, राष्ट्रीय शक्ति कहलाती है। इस शक्ति में राष्ट्र की आर्थिक, सैनिक, मनोवैज्ञानिक शक्ति सम्मिलित होती है। आज अमेरिका अपनी विशाल राष्ट्रीय शक्ति के कारण विश्व की महा शक्ति बना हुआ है।

11. **राजनीतिक शक्ति (Political Power)**- शासन चलाने की शक्ति को राजनीतिक शक्ति कहा जाता है। लोकतंत्र में शासकों को यह शक्ति चुनाव के माध्यम से प्राप्त होती है। यह शक्ति अन्य सभी शक्तियों से श्रेष्ठ होती है, क्योंकि अन्य शक्तियां इस शक्ति के अधीन होती हैं।

12. **धार्मिक शक्ति (Religious Power)**- यह वह शक्ति है, जो धर्म पर आधारित होती है या जिसका स्रोत धर्म होता है। भारत में दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम, पुरी के शंकराचार्ये व अकाल तख्त, अमृतसर के जत्थेदार और रोमन चर्च के पोप में निहित शक्ति धार्मिक शक्ति कहलाती है।

13. **विचारधारा पर आधारित शक्ति (Ideological Power)**- जहाँ शासकों को अपनी सत्ता के लिए शक्ति अथवा बल या हिंसा तथा दंड आदि का सहारा लेना पड़ता है, वहीं उन्हें किसी विचारधारा या सिद्धान्त का सहारा भी लेना पड़ता है। चीन में सरकार मार्क्सवादी विचारधारा का सहारा लेती है। इसी प्रकार कोई शासक लोकतंत्र, कोई तानाशाही तो कोई फासीवादी विचारधारा का सहारा लेता है।

14. **मनोवैज्ञानिक शक्ति (Psychological Power)**- यह वह शक्ति होती है, जिसका सम्बन्ध व्यक्तियों के मस्तिष्क या मन से होता है। जो शासक लोगों के मनों पर अपना प्रभाव जमाने में अधिक कामयाब होता है, वह उतना ही शक्तिशाली होता है, क्योंकि उसे लोगों का विश्वास प्राप्त होता है।

15. **आर्थिक शक्ति (Economic Power)**- आर्थिक शक्ति से हमारा अभिप्राय होता है-प्राकृतिक संसाधनों, उत्पादन के साधनों अर्थात् उद्योगों व व्यापार पर नियन्त्रण। जिस व्यक्ति या वर्ग का इन पर नियन्त्रण होता है, उसमें निहित शक्ति आर्थिक शक्ति कहलाती है। सामन्ती व्यवत्या में सामन्त, जमींदार व जागीरदार और पूँजीवादी व्यवस्था में पूंजीपति लोग आर्थिक शक्ति के स्वामी होते हैं।

शक्ति के स्रोत (Sources of Power)-

शक्ति के स्रोतों के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। अलग-अलग विद्वानों ने शक्ति के अलग-अलग स्रोतों का वर्णन किया है। सामान्यतः शक्ति के निम्नलिखित स्त्रोत होते हैं-

1. **संगठन (Organisation)**- यह कहा जाता है कि एकता में शक्ति होती है। एकता के लिए संगठन का सहारा लिया जाता है। जो संगठन जितना बड़ा होता है, वह उतना ही शक्तिशाली होता है। भारत में कांग्रेस पाटी और भारतीय जनता पार्टी। संगठन की दृष्टि से बड़ी पार्टियां हैं, इसीलिए ये अन्य राजनीतिक दलों से अधिक शक्तिशाली है।

2. **ज्ञान (Knowledge)**- ज्ञान को भी शक्ति का एक स्रोत माना जाता है, इसीलिए कहा गया है कि कलम तलवार से अधिक ताकतवर होती है। जो व्यक्ति जितना अधिक ज्ञानी होगा, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा और अन्य व्यक्ति उसके प्रभाव में इसीलिए आएंगे, क्योंकि वह उनके मुकाबले में अधिक बुद्धिमान है और इस नाते ठीक निर्णय ले सकता है।

3. **सामाजिक स्तर (Social Status)**- सामाजिक स्तर भी शक्ति का एक स्रोत माना जाता है। जो व्यक्ति ऊँचे घराने में जन्म लेता है, उसे समाज में श्रेष्ठ माना जाता है। भारत में जो व्यक्ति राजघरानों में पैदा हुए हैं, उनका भारत की राजनीति में आज भी दबदबा है।

4. **धन अथवा सम्पत्ति (Wealth and Property)**- धन अथवा सम्पत्ति को भी शक्ति का एक स्रोत माना जाता है। जिन लोगों के पास अपार धन-दौलत या जायदाद होती है, समाज में उनकी गिनती शक्तिशाली लोगों में होती है। अपनी धन-दौलत के कारण ये लोग अन्य लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। लोकतंत्र में सरकार चाहे किसी भी दल की क्यों न हो, नीति-निर्माण का कार्य धनी लोग ही करते हैं। निर्धन लोग तो चुनाव लड़ने की सोच भी नहीं सकते हैं। आज अमेरिका विश्व का शक्तिशाली देश इसलिए है, क्योंकि वह विश्व का सबसे समृद्ध देश है। वह अनेक गरीब और पिछड़े देशों को आर्थिक सहायता देता है और उनकी नीतियों को प्रभावित करता है।

5. **व्यक्तित्व (Personality)**- शक्ति के स्रोतों में व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व करिश्मावादी है, तो वह अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक शक्तिशाली बन जाता है। भारत में महात्मा गांधी, पण्डित जवाहर लाल नेहरु, सुभाष चन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण आदि व्यक्तित्व के धनी थे। अपने व्यक्तित्व के कारण ही इन्होंने भारत की जनता पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

6. **धार्मिक स्तर (Religious Status)**- धर्म को भी शक्ति का स्रोत माना जाता है। भारत में प्राचीन काल में राजा भी धार्मिक शक्ति के अधीन होता था, किन्तु धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म का विशेष महत्त्व नहीं होता है। फिर भी, यह भी सच्चाई है कि कुछ लोग धर्म के आधार पर शक्तिशाली बन जाते हैं। रोम के पोप को ईसाई धर्म से ही शक्ति प्राप्त हुई है।

7. **विश्वास (Faith)**- विश्वास को शक्ति का एक प्रभावशाली स्रोत माना जाता है। जो व्यक्ति जितने अधिक लोगों का विश्वास जीत लेता है, वह व्यक्ति उतना ही शक्तिशाली बन जाता है। लोकतन्त्र में जनता का विश्वास जीत कर ही नेता चुनाव में विजयी होते हैं।

8. **निपुणता (Skill)**- निपुणता को भी शक्ति का स्रोत माना जाता है। यदि व्यक्ति अपने कार्य में निपुण होगा, तो वह अन्यों पर अपना प्रभाव डालेगा चाहे उसके साधन कम ही हों। भारत के प्रधान मंत्रियों में पण्डित जवाहरलाल नेहरू व इन्दिरा गाँधी को उनकी निपुणता के कारण शक्तिशाली प्रधानमंत्री माना जाता है।

9. **जनसंचार के साधन (Means of Communication)**- जनसंचार के साधन भी शक्ति के अभूतपूर्व वृद्धि करते हैं। आधुनिक युग में इन साधनों में बहुत वृद्धि हुई है। कोई व्यक्ति या कोई देश अपनी शक्ति में वृद्धि करने के लिए इन साधनों का प्रयोग करता है। रेडियो, दूरदर्शन व समाचार-पत्रों को संचार का मुख्य साधन माना जाता है और जो व्यक्ति इन साधनों पर अपना कब्जा बना लेता है, वही व्यक्ति शक्तिशाती बन जाता है।

10. **सत्ता (Authority)**- आधुनिक लोकतान्त्रिक युग में जिस व्यक्ति या राजनीतिक दल के पास सत्ता होती है, वह शक्तिशाली बन जाता है। चुनाव में जिस दल का बहुमत होता है, वही दल सरकार का गठन करता है और देश का शासन चलाता है।

प्रश्न — राष्ट्रीय शक्ति क्या होती है? राष्ट्रीय शक्ति के निर्धारक तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
(What is National Power? Discuss the Determinants of National Power.)

उत्तर- राष्ट्रीय शक्ति, शक्ति का एक प्रमुख रूप है। **राष्ट्रीय शक्ति किसी राज्य की सम्पूर्ण शक्ति होती है। यह किसी राज्य की वह क्षमता (Capacity) होती है, जिसका प्रयोग वह अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए करता है।** कोई राज्य अपनी राष्ट्रीय शक्ति के कारण ही अन्य राज्यों को प्रभावित करता है।

राष्ट्रीय शक्ति में **तीन पक्ष होते** हैं- सैनिक शक्ति, आर्थिक शक्ति व मनोवैज्ञानिक शक्ति ।

1. **सैनिक शक्ति (Military Power)**- सैनिक शक्ति राज्य की वह शक्ति होती है, जिसके आधार पर वह देश की सीमाओं की

रक्षा करता है। यह उसकी सैनिक क्षमता पर आधारित होती है। हर राज्य के पास जल, थल और वायु तीन प्रकार की सेनाएं होती हैं। हर राज्य अपनी क्षमता के अनुसार अपनी सेनाएँ रखता है। सैनिक शक्ति किसी राष्ट्र को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित बनाती है। राज्य आन्तरिक सुरक्षा के लिए अपने पास पुलिस रखता है, लेकिन जब पुलिस शांति व व्यवस्था को कायम रखने में असफल हो जाती है, तो इस कार्य के लिए सेना की सहायता ली जाती है। वैसे तो राज्य की तीनों सेनाओं के अलग-अलग अध्यक्ष होते हैं, किन्तु तीनों सेनाओं का मुख्य सेनापति राज्याध्यक्ष होता है। वह संसद की मंजूरी से युद्ध व शांति की घोषणा कर सकता है।

किसी देश की सैनिक शक्ति तीनों प्रकार की सेनाओं की संख्या पर ही निर्भर नहीं करती है, बल्कि इत बात पर भी निर्भर करती है कि सेना युद्ध-कौशल में कितनी निपुण है; उसके पास कितनी युद्ध-सामग्री है जी उसके पास आधुनिक हथियार हैं या नहीं, परमाणु बम, मिसाइल, लड़ाकू समुद्री और हवाई जहाज आदि सैनिक शक्ति का मुख्य भाग होते हैं। सुदृढ़ सैनिक शक्ति राज्य की बाहरी आक्रमणों व आन्तरिक विद्रोहों से रक्षा करती है।

2. **आर्थिक शक्ति** (Economic Power)- आर्थिक शक्ति राष्ट्रीय शक्ति का मुख्य भाग होती है। आर्थिक शक्ति में किसी राज्य की धन-दौलत व सम्पदा शामिल होती है, जिसमें कारखाने, खनिज पदार्थ, प्राकृतिक संसाधन आदि आते हैं। आर्थिक शक्ति राज्य की शक्ति की रीढ़ होती है। जो राज्य जितना अधिक धनी होता है, वह राज्य उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है। आज अमेरिका विश्व का धनी देश है और इसी नाते विश्व की महान शक्ति भी है।

राज्य की आर्थिक शक्ति उसकी आर्थिक व्यवस्था पर बहुत कुछ निर्भर करती है। आज विश्व में कई प्रकार की आर्थिक व्यवस्थाएं- पूंजीवादी, समाजवादी और मिश्रित अर्थव्यवस्था स्वीकार की जाती है। इन सभी व्यवस्थाओं के अपने-अपने गुण व दोष हैं। हर राज्य अपनी मर्जी से आर्थिक व्यवस्था को अपनाता है। भारत ने सन् 1991 के पश्चात् उदार आर्थिक नीतियां अपनाकर अपनी अर्थव्यवस्या को बहुत मजबूत बनाया है। देश की आयात-निर्यात नीति आर्थिक नीति का ही भाग होती है। इसके अतिरिक्त बैंकिंग प्रणाली भी आर्थिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है।

3. **मनोवैज्ञानिक शक्ति** (Psychological Power)- मनोवैज्ञानिक शक्ति का सम्बन्ध राज्य की जनता के होता है। इसका मुख्य सम्बन्ध लोगों के मस्तिष्क अथवा उनकी मनोदशा से होता है। यदि लोगों का सरकार पर विश्वास है, तो लोग सरकार को पूरा सहयोग देते हैं और संकट के समय देशभक्ति का परिचय देते हैं। इससे देश मजबूत रहता है। यदि लोग किसी दबाव या भय से सरकार को समर्थन देते हैं, तो यह ठीक नहीं होता है, क्योंकि ऐसे लोग सरकार का कभी भी विरोध कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक शक्ति का सम्बन्ध राष्ट्र-भक्ति व राष्ट्रीय एकीकरण से भी होता है। यदि देश में राष्ट्रीय एकीकरण है और जनता देशभक्त है, तो वहाँ मनोवैज्ञानिक शक्ति मजबूत होती है)

राष्ट्रीय शक्ति के निर्धारक तत्त्व (Determinants of National Power) - सामान्य शक्ति की तरह राष्ट्रीय शक्ति के भी अनेक निर्धारक तत्त्व होते हैं। राष्ट्रीय शक्ति के प्रमुख निर्धारक तत्त्व निम्नलिखित हैं-

1. **भौगोलिक स्थिति** (Geographical Situation)- देश की भौगोलिक स्थिति का उसकी राष्ट्रीय शक्ति पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक स्थिति में देश का क्षेत्रफल, सीमाएं, भू-आकृति, जलवायु आदि बातें सम्मिलित होती हैं। प्रत्येक देश की भौगोलिक स्थिति अन्य देशों से अलग होती है। देश के भौगोलिक क्षेत्र में उसकी भूमि, नदियां, पहाड़, वन, झीलें और खनिज पदार्थ सम्मिलित होते हैं। यदि कोई देश आकार की दृष्टि से बड़ा होगा, उसकी भूमि उपजाऊ होगी, उसमें नदियां और वन व बहुतायत में खनिज पदार्थ होंगे, तो वह एक शक्तिशाली देश होगा। यदि किसी देश का आकार छोटा होगा और वहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अभाव होगा तो वह देश कम शक्तिशाली होगा। विश्व में अमेरिका शक्तिशाली देश इसलिए है, क्योंकि उसका बड़ा क्षेत्र है और उसके पास प्राकृतिक संसाधन भी बहुतायत में हैं।

देश की भौगोलिक स्थिति का उसकी राष्ट्रीय शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। विश्व में कुछ देश ऐसे हैं, जो अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सुरक्षित हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि इसे उत्तर दिशा से हिमालय सुरक्षा प्रदान करता है और तीन ओर से समुद्र इसकी रक्षा करता है।

देश की जलवायु भी उसकी शक्ति को प्रभावित करती है। जिन देशों की जलवायु अनुकूल होती है, वहाँ पर जनसंख्या भी अधिक होती है; यहाँ उपज भी अधिक होती है; वहाँ के लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ठीक रहते हैं और वहाँ उद्योग-धन्धे भी अधिक होते हैं। ऐसे देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं और आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही ये देश शक्तिशाली भी होते हैं।

2. **वैज्ञानिक एवं तकनीकी उन्नति (Scientific and Technological Progress)**- आज का युग विज्ञान का युग है। अतः आज जो देश वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टि से जितना उन्नत है, वह उतना ही शक्तिशाली देश है। अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, चीन व रूस इसलिए शक्तिशाली देश है, क्योंकि ये विज्ञान और तकनीकी दृष्टि से उन्नत देश हैं। अमेरिका विश्व का सबसे शक्तिशाली देश इसलिए है, क्योंकि वह वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टि से बहुत ही उन्नत देश है।

3. **जनसंख्या (Population)**- किसी देश को शक्तिशाली बनाने में उसकी जनसंख्या का भी योगदान होता है। मानवीय शक्ति के कारण कोई देश मजबूत हो सकता है। यदि किसी देश की जनसंख्या उसके संसाधनों के अनुपात में होगी, तो वह देश शक्तिशाली होगा। ऐसा देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का सही से दोहन कर सोएगा और सुरक्षा के लिए अपने पास बड़ी सेना रख पाएगा। इसी के साथ जनसंख्या का शिक्षित होना भी जरूरी है और साथ ही लोगों का चरित्रवान एवं साहसी होना भी जरूरी है। कई बार जनसंख्या राज्य के लिए हानिकारक भी होती है, क्योंकि अधिक जनसंख्या से बेरोजगारी और गरीबी बढ़ सकती है। संसाधनों की कम संख्या होने के कारण भारत मानव शक्ति के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहता है। जनसंख्या के बारे में यह कहा जाता है कि यदि यह राज्य के संसाधनों के आकार और अनुपात में होंगी, तो राज्य शक्तिशाली होगा, अन्यथा नहीं।

4. **अर्थव्यवस्था (Economic System)**- देश की अर्थव्यवस्था का उसकी राष्ट्रीय शक्ति से सीधा सम्बन्ध होता है। यदि देश आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होगा, तो वह राष्ट्रीय शक्ति की दृष्टि में भी सुदृढ़ होगा, क्योंकि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा और वह अन्य देशों को आर्थिक मदद देते हुए उन्हें अपने प्रभाव में रखेगा। अमेरिका विश्व का सबसे धनी देश है, इसीलिए वह विश्व का सबसे शक्तिशाली देश है। देश की अर्थव्यवस्था उसकी आर्थिक स्थिति को कमजोर या मजबूत बनाती है। भारत में 1991 के पश्चात् उदार आर्थिक नीतियां अपनायी गयीं, जिसके सकारात्मक परिणाम निकले और देश की अर्थव्यवस्था मजबूत हुई।

5. **औद्योगिक क्षमता (Industrial Capacity)**-देश की आर्थिक स्थिति देश के उद्योगों पर निर्भर करती है। जिस देश में जितने अधिक उद्योग होंगे, वह देश उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा। ब्रिटेन औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् शक्तिशाली देश बन गया था। आज अमेरिका, जापान, जर्मनी व फ्रांस इसलिए शक्तिशानी देश हैं, क्योंकि इनकी औद्योगिक क्षमता बहुत अधिक है। भारत भी अपनी औद्योगिक क्षमता बढ़ाने के प्रयल कर रहा है जिससे कि अधिक-से-अधिक लोगों को रोजगार मिल सके और राजस्व में भी वृद्धि हो सके।

6. **शासन-प्रणाली (Form of Government)**-देश की राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण करने में शासन प्रणाली का भी योगदान होता है। यदि देश में मजबूत शासन है, तो देश मजबूत होगा। यदि शासन-प्रणाली में स्वामित्व होगा, तो देश का सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास होगा और वह सुदृढ़ देश बनकर उभरेगा। सुदृढ़ शासन के कारण भारत ने बांग्ला देश के युद्ध में पाकिस्तान पर अभूतपूर्व विजय हासिल की थी। जिन देशों में सरकारें जल्दी-जल्दी गिरती रहती है, वे देश कमजोर होते हैं।

7. **प्राकृतिक संसाधन व उनका दोहन (Natural Resources and Their Exploitation)**- किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों व उनके दोहन का उसकी राष्ट्रीय शक्ति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। जिस देश के पास जितने अधिक प्राकृतिक संसाधन होंगे और वह देश इनका उनका अधिक दोहन करेगा, वह देश उतना ही मजबूत होगा। अमेरिका महा शक्ति इसीलिए बना है, क्योंकि उसके पास प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन हैं और उसने इनका पूरा-पूरा दोहन किया है।

8. **यातायात व संचार के साधन (Means of Transport and Communication)**- किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण व विकास में उसके संचार के साधनों का भी योगदान होता है। जिस देश में संचार व यातायात के साधन अधिक होंगे, उस देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में उतनी ही अधिक सुगमता होगी और उसमें उतना ही अधिक प्रभावशाली नियन्त्रण होगा और वह किसी क्षेत्र में होने वाले विद्रोह या असंतोष को दबाने में उतना ही अधिक समर्थ होगा।

9. **नेतृत्व (Leadership)**- देश का नेतृत्व कैसा है, इस बात का भी राष्ट्रीय शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश का नेतृत्व कुशल व्यक्तियों के हाथों में है, तो देश मजबूत रहेगा और यदि देश का नेतृत्व अकुशल होगा, तो देश कमजोर बनेगा। पं. जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री व इन्दिरा गांधी ने देश की जो कुशल नेतृत्व दिया, उसके परिणामस्वरूप भारत

मजबूत देश बनकर उभरा। वर्तमान में भी भारत का नेतृत्व कुशल माना जाता है

10. **राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीय मनोवल (National Character and National Moral)**- राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीय मनोबल का भी राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण में योगदान होता है। यदि देश के लोगों का चरित्र उत्तम होगा और उनमें देश-भक्ति की भावना होगी, तो यह देश प्रगति करेगा। इसी प्रकार यदि लोगों का मनोबल ऊंचा होगा, तो संकट के समय भी लोग नहीं घबराएंगे और वे देश को संकट से बचा लेंगे।

11. **विदेश नीति (Foreign Policy)**- देश की विदेश नीति भी राष्ट्रीय शक्ति को प्रभावित करती है। कुशल विदेश नीति से देश अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित करने में कामयाब होता है और वह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रमुख भूमिका निभाता है। भारत ने अपनी गुट-निरपेक्ष नीति के कारण विश्व के सभी देशों से अपने विकास के लिए सहयोग प्राप्त किया है। सफल विदेश नीति के कारण ही भारत ने अमेरिका, चीन तथा रूस से अच्छे सम्बन्ध बना रखे हैं।

12. **सामाजिक संरचना (Social Structure)** — देश की एकता व अखण्डता पर उसकी सामाजिक संरचना का प्रभाव पड़ता है। यदि समाज एकता के सूत्र में बंधा है, समाज में आर्थिक विषमता, धर्म व जाति का भेदभाव नहीं है, तो समाज में एकता होगी और राष्ट्रीय एकीकरण व राष्ट्र-निर्माण में कठिनाई नहीं होगी।

प्रश्न — **सत्ता की परिभाषा दीजिए। इसके लक्षणों, प्रकारों और कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

(Define Authority. Discuss its characteristics, kinds and functions.)

उत्तर- सत्ता भी शक्ति की तरह राजनीति विज्ञान की एक मुख्य अवधारणा है। साधारण व्यक्ति सत्ता और शक्ति में कोई अन्तर नहीं मानता है और दोनों का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर देता है, जब कि राजनीति विज्ञान की दृष्टि से ये दोनों अलग-अलग अवधारणाएं हैं।

सत्ता का अर्थ (Meaning of Authority)- अंग्रेजी भाषा का 'Authority' शब्द लैटिन भाषा के ऑक्टोरिटस (Auctoritas) शब्द से बना है, जिसका अर्थ उस भाषा में सहमति अथवा स्वीकृति होता है। प्राचीन रोम में बुजुर्गों की एक संस्था होती थी, जिसे सीनेट (Senate) कहा जाता था। यह संस्था सरकार के कानूनों और निर्णयों को स्वीकृति देती थी और जिन कानूनों एवं निर्णयों को यह संस्था अपनी स्वीकृति दे देती थी, जनता उन कानूनों एवं निर्णयों को सही मानती थी और उनका पालन करती थी। इस प्रकार शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि में **सत्ता उस शक्ति को कहा जाता है, जो जनता की स्वीकृति पर आधारित होती है।**

सत्ता की परिभाषाएं (Definitions of Authority)-

विभिन्न विद्वानों ने सत्ता को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सत्ता की कुछ प्रमुख परिभाषाएं हैं-

1.मैकाइवर के अनुसार, "प्रायः सत्ता की परिभाषा शक्ति के रूप में की जाती है-दूसरों से आज्ञा पालन करवाने की शक्ति।"

2 राबर्ट डहल के अनुसार, "प्रायः वैध शक्ति को सत्ता कहा जाता है।"

3. एरेन्डट के अनुसार, "सत्ता का अभिप्राय उस शक्ति से है, जो सहमति पर आधारित होती है। इसका मुख्य चिह्न उन लोगों द्वारा इसकी स्वीकृति है, जो इसकी आज्ञा के पालन के अभ्यस्त होते हैं।"

∘ सत्ता वह शक्ति है, जो जनता द्वारा स्वीकृत होती है। इस शक्ति के आधार पर सत्ताधारी निर्णय लेता है और जनता उसके निर्णयों को स्वीकार करती हैं।

सत्ता की विशेषताएं (Characteristics of Authority)-सत्ता की उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से इसकी निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं-

1. **प्रभुत्व (Dominance)** - सत्ता किसी व्यक्ति या संस्था को सर्वोच्चता प्रदान करती है। सत्ताधारी को अपने अधीनस्थों पर

नियंत्रण रखने और उन्हें निर्देशित करने का अधिकार होता है। अपने इसी अधिकार के द्वारा सत्ताधारी अपनी आज्ञाओं का पालन करवाता है।

2. औचित्यपूर्ण शक्ति (Legitimate Power) - सत्ता औचित्यपूर्ण शक्ति होती है। राबर्ट डहल ने इसी भाव को प्रकट करते हुए सत्ता को परिभाषित किया है। उसके अनुसार, "सत्ता प्रायः उचित शक्ति होती है।" यह शक्ति कानून पर अथवा संविधान पर आधारित होती है।

3. स्वीकृति (Acceptance)- सत्ता स्वीकृत शक्ति होती है। इसका आधार दमन या दंड नहीं, बल्कि लोगों की स्वीकृति है। इसे जनता की स्वीकृति इसलिए मिलती है, क्योंकि यह वैध होती है।

4. उत्तरदायित्व (Responsibility)- सत्ता के साथ उत्तरदायित्व जुड़ा होता है। जिस व्यक्ति या संस्था के पास सत्ता होती है, वह अपने द्वारा किए गए सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल अपने सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

5. विवेकपूर्णता (Rationality)- फ्रेडरिक का कहना है कि सत्ता सदैव विवेकपूर्ण होती है। सत्ताधारी का प्रत्येक आदेश व कार्य तर्क एवं विवेक पर आधारित होता है अर्थात् वह उसका औचित्य सिद्ध कर सकता है। जनता केवल विवेकपूर्ण निर्णयों को ही उचित मानती है और उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। इसलिए सत्ता में विवेकपूर्णता का गुण होता है।

6. पदसोपान (Hierarchy) - सत्ता हमेशा पदसोपानीकृत होती है। सत्ता संगठन के विभिन्न सोपानों के माध्यम से कार्य करती है। सत्ता-प्राप्त उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश देता है और अधीनस्थ उसके आदेशों का पालन करते हैं। संगठन के सभी अधिकारी अपने कार्यों के लिए अपने उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

7. आदेश देने की क्षमता (Capacity of Order) - सत्ताधारी को निर्णय लेने का अधिकार होता है और वह अपने निर्णय की पालना के लिए अपने अधीनस्थों को आदेश देने के लिए अधिकृत होता है। संगठन में सत्ताधारी को छोड़कर अन्य किसी को आदेश देने की शक्ति प्राप्त नहीं होती है।

8. निश्चितता (Definiteness) - सत्ता हमेशा निश्चित होती है। संगठन में सत्ताधारी एक निश्चित व्यक्ति या संस्था होता है, जिसे पहचाना या देखा जा सकता है। अन्य शब्दों में, सत्ताधारी अमूर्त नहीं हो सकता है।

9. सत्ता स्वयं शक्ति नहीं होती (Authority is not Power Itself) - सत्ता स्वयं में शक्ति नहीं होती है, क्योंकि शक्ति और सत्ता अलग-अलग अवधारणाएं होती हैं। रूसों के मतानुसार शक्ति में दमन व हिंसा का सहारा लिया जा सकता है। शक्ति उचित व अनुचित दोनों प्रकार की हो सकती है, जब कि सत्ता हमेशा उचित होती है। सत्ता का आधार स्वीकृतिं होती है और सत्ता में दमन च हिंसा का कोई स्थान नहीं होता है।

सत्ता के प्रकार (Kinds of Authority) - विभिन्न विद्वानों ने सत्ता के अनेक प्रकार बताए हैं। इनमें , मैक्स वेबर का सत्ता-सम्बन्धी वर्गीकरण सबसे उपयुक्त माना जाता है। वेबर ने सत्ता के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं-

1. परम्परागत सत्ता (Traditional Authority) - उस सत्ता को, जिसका आधार कोई परम्परा होती है, हम परम्परागत सत्ता कहते हैं। भारत में यह परम्परा रही है कि परिवार का मुखिया परिवार में सत्ताधारी होता है और परिवार के सदस्य उसके आदेशों का पालन करते हैं। ऐसे ही किसी विभाग के अधीनस्थ कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की आज्ञा का पालन यह मानकर करते हैं कि यह पहले से ही होता रहा है। परम्परागत सत्ता में मालिक एवं नौकर का सम्बन्ध बनता है। आधुनिक समय में इस प्रकार की सत्ता अपना महत्व खोती जा रही है।

2. करिश्मावादी सत्ता (Chrismatic Authority) - कुष्ठ व्यक्तियों में करिश्माई गुण होते हैं। अपने इन गुणों के कारण ऐसे व्यक्ति सत्ता प्राप्त कर लेते हैं। इनमें निहित सत्ता को करिश्मावादी या जादुई सत्ता कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति, जिसके पास जादुई सत्ता होती है, के आदेशों का पालन जनता आँख बंद करके करती है। खेल के क्षेत्र में मेजर ध्यानचन्द, सिनेमा के क्षेत्र में

दिलीप कुमार, संगीत के क्षेत्र में शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्ला खान, नौशाद व लता मंगेशकर करिश्मावादी सत्ता के स्वामी हैं। ऐसे लोगों के पास कानूनी सत्ता नहीं होती है, फिर भी ये अपने विशेष गुणों से सत्ता प्राप्त कर लेते हैं।

3. वैधानिक सत्ता (Legal Authority) - वह सत्ता जिसका आधार कानून या संविधान होता है, वैधानिक या कानूनी सत्ता कही जाती है। भारत में राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री को जो सत्ता प्राप्त है, उसका आधार भारत का संविधान है। इनमें निहित सत्ता हमेशा उचित होती है, जिसे जनता अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। भारत में संसद व न्यायालयों को जो सत्ता प्राप्त है, वह वैधानिक सत्ता ही है।

4. अवैध सत्ता (Illegitimate Authority) - वह सत्ता जो अनुचित साधनों से प्राप्त की जाती है और जिसका आधार कोई कानून नहीं होता है, अवैध सत्ता कहलाती है। इस प्रकार की सत्ता छल-कपट, हिंसा, विद्रोह व क्रांति द्वारा प्राप्त की जाती है। पाकिस्तान में जनरल परवेज मुशर्रफ ने शुरू में अवैध सत्ता प्राप्त की थी। ऐसी सत्ता स्थायी नहीं होती है, क्योंकि जनता इसे अपनी स्वीकृत्ति नहीं देती है।

5. धार्मिक सत्ता (Religious Authority) - वह सत्ता जो धर्म के आधार पर प्राप्त की जाती है, धार्मिक सत्ता कहलाती है। रोमन चर्च के पोप, दिल्ली के जामा मस्जिद के शाही इमाम, अमृतसर स्थित अकाल तख्त के जत्थेदार व पुरी के शंकराचार्य को धार्मिक सत्ता प्राप्त है। यह सत्ता धार्मिक नियमों या परम्पराओं पर आधारित होती है। आधुनिक युग में अधिकतर धर्म-निरपेक्ष राज्य अस्तित्व में आ चुके हैं, किन्तु इस प्रकार की सत्ता महत्त्वहीन नहीं हुई है।

6. राजनीतिक सत्ता (Political Authority) - यह वह सत्ता होती है, जिसके तहत किसी व्यक्ति को शासन करने की शक्ति मिलती है। लोकतन्त्र में राजनीतिक दल चुनाव जीत कर शासन सत्ता प्राप्त करते हैं। आज विधायकों, सांसदों, मंत्रियों के पास राजनीतिक सत्ता होती है। इस सत्ता का आधार जनमत होता है। लोकतन्त्र में सत्ता जनता के पास होती है और जनता इसे चुनाव के माध्यम से किसी दल को सौंप देती है।

सत्ता के कार्य (Functions of Authority) - प्रत्येक समाज में सत्ताधारक को अनेक कार्य करने होते अलग-अलग समाजों और अलग-अलग समय में सत्ता के अलग-अलग कार्य होते हैं। सामान्यतया सत्ता के निम्नलिखित कार्य होते हैं-

1. निर्णय लेना (To Make Decisions)- सत्ता का प्रमुख कार्य संगठन में निर्णय लेना होता है। समय-समय पर सत्ता द्वारा संगठन के लिए अनेक निर्णय लिए जाते हैं, किन्तु निर्णयों का संगठन में तभी महत्त्व होता है, जब वे उचित हों। यदि सत्ता द्वारा अनुचित निर्णय लिए जाएंगे, तो जनता उनका विरोध करेगी और सत्ताधारी की सत्ता के लिए संकट पैदा हो जाएगा।

2. निर्णय लागू करना (To Implement Decisions)- मत्ता का दूसरा मुख्य कार्य संगठन में लिए गए निर्णयों को लागू करना होता है। सत्ताधारी अनेक अधिकारियों व कर्मचारियों के माध्यम में अपने निर्णयों को लागू करता है। सत्ताधारी का कार्य कानून को लागू करना और ऐसा करते हुए समाज में शक्ति और व्यवस्था बनाए रखना होता है।

3. आदेश देना (To Give Orders) - सत्ता अपने अधीन संगठन के लिए आदेश देने का अधिकार रखती है। सत्ताधारी संगठन में अपने अधीनस्थों को आदेश अथवा निर्देश देता है, जिसकी पालना अधीनस्थ करते हैं। प्रत्येक आदेश ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है।

4. नियंत्रण करना (To Keep Control) - सत्ताधारी व्यक्ति का एक अन्य कार्य अपने संगठन पर नियंत्रण रखना होता है। वह नियंत्रण रखने के लिए ही अपने अधीनस्थ को निर्देश देता है। वह उनके कार्यों का निरीक्षण करता है और त्रुटि मिलने पर उन्हें त्रुटि को ठीक करने का आदेश देता है। वह अपने अधीनस्थों के कार्यों की रिपोर्ट लेता रहता है।

5. अनुशासन रखना (To Maintain Discipline) - सत्ता का एक प्रमुख कार्य संगठन में अनुशासन कायम करना होता है। वस्तुतः अनुशासन से ही संगठन में कार्यकुशलता आती है। यदि कोई कर्मचारी अनुशासन भंग करता है, तो सत्ताधारी उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकता है।

6. समन्वय बनाना (To Establish Co-ordination)- प्रत्येक संगठन में अनेक व्यक्ति कार्यरत होते हैं। सत्ताधारी उन सभी के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है, ताकि संगठन एकजुट होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इससे समय और धन का दुरुपयोग भी बचता है और संगठन में कार्य-कुशलता भी आती है। भारत में प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रियों में समन्वय स्थापित करने का काम करता है।

7. उत्तरदायित्व निश्चित करना (Tol Responsibility)- सत्ताधारी संगठन में कार्यरत विभिन्न अधिकारियों का उत्तरदायित्व निश्चित करता है, ताकि कार्य-सम्बन्धी गलती के लिए यह पता लगाया सके कि कौन अधिकारी दोषी है। कार्य-कुशलता के लिए उत्तरदायित्व निश्चित करना जरूरी होता है।

8. विशेषज्ञों की सलाह लेना (To Take the Advice of Experts)- कोई भी व्यक्ति सभी कार्यों में निपुण नहीं होता है। अतः सत्ताधारी का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह कोई निर्णय लेने से पहले विशेषज्ञों की राय अवश्य ले, ताकि वह ठीक निर्णय ले सके। विशेषज्ञों से ली गयी सत्ताह में गलती की कम संभावना होती है।

अन्य कार्य (Other Functions) - उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त सत्ताधारी के अन्य कई कार्य भी करता है, जैसे-विकास के लिए योजना बनाना, जन-कल्याणकारी कार्य करना, संगठन को मजबूत बनाना आदि।

प्रश्न — शक्ति और सत्ता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।(Distinguish between Power and Authority.)

उत्तर- शक्ति और सत्ता राजनीति विज्ञान की दो प्रमुख अवधारणाएं हैं। इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है. क्योंकि एक के बिना दूसरी असंभव है। इनके गहन सम्बन्ध के कारण ही कुछ व्यक्ति इन दोनों को एक मान कते हैं और इनका एक-दूसरे के लिए प्रयोग कर बैठते हैं। किन्तु राजनीति विज्ञान की दृष्टि से ये दोनों जनय-अलग अवधारणाएं हैं। **सत्ता और शक्ति में निम्नलिखित अन्तर हैं-**

1. सत्ता का आधार सहमति होता है अर्थात यह दूसरों की सहमति पर टिकी होती है, जब कि शक्ति का आधार बल, हिंसा, उत्पीड़न और भय होता है।

2. सत्ता हमेशा औचित्यपूर्ण होती है, क्योंकि इसका आधार कानून या संविधान होता है, जब कि शक्ति औचित्यपूर्ण भी हो सकती है और अनौचित्यपूर्ण भी। अन्य शब्दों में, शक्ति दोनों प्रकार की हो सकती है, जब कि सत्ता हमेशा औचित्यपूर्ण होती है।.

3. सत्ता हमेशा निश्चित और स्पष्ट होती है, जब कि शक्ति अस्पष्ट, अनिश्चित और अदृश्य होती।

4. सत्ता स्वयं शक्ति नहीं होती है, बल्कि यह शक्ति के प्रयोग का संस्थागत अधिकार होता है।

5. सत्ता के आदेशों की पालना लोग स्वाभाविक रूप से करते हैं। लोग भय या डर से सत्ता का पालन नहीं करते हैं, जब कि शक्ति का पालन हमेशा भय या डर से किया जाता है, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति शक्ति की पालना नहीं करेगा, तो उसे हानि उठानी पड़ेगी। शक्ति का पालन हिंसा, उत्पीड़न व भय से किया जाता है, जब कि सत्ता का पालन लोग स्वतः ही करते हैं।

6. सत्ता अधिकार से जुड़ी होती है। लोकतंत्र में जब किसी दल को सत्ता प्राप्त हो जाती है, तो उसे शासन-संचालन का अधिकार मिल जाता है। इसी प्रकार किसी भी संगठन में सर्वोच्च अधिकारी को सत्ता मिलती है, तो उसे अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण का अधिकार स्वतः मिल जाता है। शक्ति व्यवहार से जुड़ी है, क्योंकि इसके द्वारा लोगों का व्यवहार बदला जाता है।

7. सत्ता से किसी प्रयोजन को पूरा किया जा सकता है, जब कि शक्ति द्वारा प्रयोजन पूरा किया जाना असंभव होता है।

8. सत्ता आदेश देने की शक्ति होती है, जब कि शक्ति दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता होती है। 9. सत्ता के लिए पद-सोपान जरूरी होता है, जब कि शक्ति के लिए यह जरूरी नहीं होता है।

10. सत्ता का आधार उचित ही बलवान (Right is Might) होता है, जब कि शक्ति का आधार जिसकी लाठी उसकी भैंस

(Might is Right) होता है।

11. सत्ता के ऊपर अनेक प्रतिबंध होते हैं, किन्तु शक्ति के ऊपर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं होता है, क्योंकि जहाँ पर प्रतिबंध होता है, वहाँ शक्ति वास्तव में होती ही नहीं है।

12. सत्ता का उद्देश्य सार्वजनिक अर्थात् जन-कल्याण होता है, जब कि शक्ति का उद्देश्य व्यक्तिगत हित होता है। इसमें दूसरों की भलाई नहीं होती है।

13. सत्ता मानवीय होती है, जब कि शक्ति पाश्विक होती है, क्योंकि इसमें हिंसा व दमन का प्रयोग किया जाता है।

14. सत्ता के साथ उत्तरदायित्व जुड़ा होता है। सत्ता में उत्तरदायित्व से नहीं बचा जा सकता है, जब कि शक्ति में उत्तरदायित्व का गुण नहीं होता है। शक्तिधारक शक्ति के उचित व अनुचित प्रयोग के लिए उत्तरदायी नहीं होता है।

15. सत्ता सकारात्मक मानवीय सम्बन्धों में ही पायी जाती है, लेकिन शक्ति सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के मानवीय संबंधों में पायी जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शक्ति और सत्ता में बहुत अन्तर होता है, क्योंकि दोनों के आधार और स्वरूप भिन्न है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनमें कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इन दोनों में इतना गहरा सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरी का होना संभव नहीं है। ये दोनों सहयोगी अवधारणाएं हैं।

प्रश्न — औचित्यता का क्या अर्थ होता है? औचित्यता की प्रमुख विशेषताओं और प्रकारों का वर्णन कीजिए। (What is the meaning of Legitimacy? Discuss the main characteristics and kinds of legitimacy.)

उत्तर- औचित्यता अथवा वैधता राजनीति विज्ञान की एक ऐसी अवधारणा है, जिसे एक पैमाने अथवा मापदंड के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके आधार पर हम शक्ति या सत्ता के सम्बन्ध में यह पता लगा सकते हैं कि शक्ति या सत्ता उचित है या अनुचित। जिस शक्ति को औचित्यता प्राप्त हो जाती है, उसका पालन जनता स्वेच्छा से करती है। औचित्यता शक्ति को प्रभावशाली बना देती है।

औचित्यता अथवा वैधता का अर्थ (Meaning of Legitimacy)- अंग्रेजी भाषा का 'Legitimacy' शब्द लैटिन भाषा के 'Legitimus' शब्द से बना है, जिसका अर्थ Lawful (वैधानिक) होता है। इस प्रकार शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से औचित्यता का अर्थ है-कानून अथवा नियम के अनुकूल होना ।इस प्रकार जो भी कार्य कानून के अनुकूल होता है, उसे औचित्यपूर्ण कहा जाता है और जो कार्य कानून के प्रतिकूल होता है, उसे अनौचित्यपूर्ण कहा जाता है।
औचित्यता की अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। औचित्यता की कुछ प्रसिद्ध **परिभाषाएं** निम्नलिखित हैं-

1. जीन ब्लोंडेल के अनुसार, "औचित्यता से अभिप्राय वह दायरा है, जहाँ तक लोग सम्बन्धित संगठन को बिना प्रश्न पूछे तथा स्वाभाविक तौर पर स्वीकार करते हैं-सहमति और स्वीकृति का दायरा जितना व्यापक होगा, संगठन उतना ही औचित्यपूर्ण होगा।"

2. एस.एम. लिप्सेट के अनुसार, "औचित्यता में व्यवस्था की वह क्षमता शामिल है, जिसके द्वारा यह विश्वास उत्पन्न तथा कायम रखा जाता है कि वर्तमान राजनीतिक संस्थाएं समाज के लिए सबसे उपयुक्त हैं।"

3. प्लानो तया रिग्स के अनुसार, "औचित्यता ऐसा गुण है, जो अधीनस्य कर्मचारियों द्वारा इच्छानुसार स्वीकार किया जाता है; जो राजनीतिक शक्ति के प्रयोग को औचित्यपूर्ण सत्ता में बदलता है; जो नेताओं और कानून को सत्ता प्रदान करता है; जो व्यक्तिगत नेताओं, संस्थाओं और व्यवहार सम्बन्नी नियमों को सम्मान और स्वीकृति प्रदान करता है।"

औचित्यता/वैधता की विशेषताएं (Characteristics of Legitimacy)-औचित्यता की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं

1. विश्वास पैदा करने की क्षमता (Capacity of the Creation of Belief) - औचित्यता यह क्षमता होती है, जिससे लोगों में यह विश्वास पैदा होता है कि वर्तमान शासन-प्रणाली उचित है अर्थात् यह कानून के अनुकूल है; इसका लक्ष्य सार्वजनिक कल्याण है और शासन लोगों के मूल्यों व आदशों के अनुसार चलाया जा का है। जनता का विश्वास शासन की सभी संरचनाओं के लिए होना जरूरी है। जनता का विश्वास प्राप्त करने से शासन सुदृढ़ बनता है।

2. शक्ति को सत्ता में परिवर्तित करने का गुण (Quality of Converting Power into Authority)-औचित्यता वह गुण है, जो शक्ति को सत्ता में बदल देता है। जब शक्ति के साथ औचित्यता को जोड़ दिया जाता है, तो वह वैध बन जाती है और जब सत्ता से वैधता को निकाल दिया जाता है, तो वह उत्पीड़क शक्ति बन जाती है। अतः वैधता ही शक्ति को उचित बनाती है।

जब शक्ति सत्ता में परिवर्तित हो जाती है, तो वह स्थिर और मजबूत बन जाती है, क्योंकि उसे जनता की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है अर्थात लोग शक्ति का विरोध नहीं करते हैं। जब कोई शक्तिधारक डर या भय से जनता से अपनी बात मनवाता है, तो वह शक्ति का प्रयोग कर रहा होता है। किन्तु जब जनता शक्तिधारक के आदेशों का स्वेच्छा से पालन करती है, तब वह शक्ति नहीं, बल्कि सत्ता का प्रयोग कर रहा होता है।

3. राजनीतिक व्यवस्था की उपयोगिता दर्शाने की क्षमता (Capacity of Showing Utility of Political System)- किसी राजनीतिक व्यवस्था को लोग तब स्वीकार करते हैं, जब वे यह महसूस करते हैं कि यह उनके लिए अत्यन्त लाभदायक है। लोग राजनीतिक व्यवस्था की उपयोगिता का एहसास उसकी औचित्यता के आधार पर ही करते हैं। लोग शासन व्यवस्था के निर्णयों का पालन तभी करते हैं, जब यह विश्वास हो जाता है कि ये निर्णय उनके लिए उचित हैं, क्योंकि ये निर्णय उचित शासन व्यवस्था द्वारा लिए गए हैं। इस प्रकार औचित्यता शासन प्रणाली की उपयोगिता को दर्शाने का कार्य करती है।

4. शासन-व्यवस्था में स्थायित्व लाने का आधार (Base to Bring Stability in Government)- कोई भी शासन-व्यवस्था तब तक स्थायी नहीं हो सकती, जब तक उसे वैधता प्राप्त नहीं हो जाती है। स्थायित्व का प्रत्यक्ष संबंध वैधता से है। शासन-सम्बन्धी वैधता से ही इसमें स्थिरता आती है। जब लोगों में यह विश्वास पैदा हो जाता है कि शासन-व्यवस्था उनके लिए उपयोगी है, तभी लोग उस शासन-व्यवस्था के आदेशों का पालन करते हैं और यदि शासन-व्यवस्था को लोगों का विश्वास प्राप्त नहीं होता, तो शासन-व्यवस्था संकट में पड़ जाती है।

5. औचित्यता शक्ति के प्रयोग को कम करती है (Legitimacy Minimises the Use of Power)-औचित्यता वह गुण है, जो शक्ति के प्रयोग को कम करता है। जब सत्ताधारी को औचित्यता प्राप्त हो जाती है, तो उसके आदेशों का पालन स्वयं ही होने लगता है अर्थात् सत्ताधारी को अपने आदेशों की पालना के लिए शक्ति के प्रयोग की जरूरत नहीं पड़ती है।

6. प्रभाविकता से सम्बन्धित (Related to Effectiveness)- वैधता का सम्बन्ध प्रभाविकता से भी होता है। जब शासन को वैधता प्राप्त हो जाती है, तब वह अधिक प्रभावकारी बन जाती है। वैधता प्राप्त होने पर शासन को लोगों का विश्वास प्राप्त हो जाता है और लोगों का विश्वास प्राप्त होने पर शासन को जनता का पूरा सहयोग मिलता है। वस्तुतः वैधता शासन को अधिक प्रभावकारी बनाने का एक साधन है।

7. व्यापक सहमति पर आधारित (Based on Extensive Acceptance) - औचित्यता जनता की व्यापक सहमति पर आधारित होती है। शासन को जितनी अधिक जन-सहमति प्राप्त होती है, उसकी नीतियों व निर्णय उतने ही उचित बन जाते हैं और जनता उनकी खुशी से पालना करती है। शासन को जन-सहमति किसी दबाव या भय से प्राप्त नहीं होती, बल्कि उसको औचित्यता से जन-सहमति अपने आप मिल जाती है, क्योंकि लोगों का यह विश्वास हो जाता है कि शासन उचित और उनके लिए लाभकारी है।

8. औचित्यता लोगों के मूल्यों पर निर्भर करती है (Legitimacy depends on the Values of People)-किसी राजनीतिक व्यवस्था का उचित या अनुचित ठहराने का आधार लोगों के मूल्य(विश्वास) होते हैं। यदि राजनीतिक व्यवस्था लोगों के मूल्यों के अनुकूल कार्य करती है, तो लोग उसे उचित मानते हैं अन्यथा उसका विरोध करते हैं। हर समाज के अपने अलग मूल्य होते हैं, इसीलिए प्रत्येक समाज की अपनी अलग राजनीतिक संस्कृति होती है जिस पर उसकी राजनीतिक व्यवस्था

टिकी होती है।

औचित्यता/वैधता के प्रकार (Kinds of Legitimacy)- मैक्स वेबर, डेविड ईस्टन, स्टर्नबर्जर व फ्रेडरिक ने औचित्यता को अलग-अलग प्रकारों या किस्मों में बाँटा है। इन सभी विद्वानों के विचार यहाँ प्रस्तुत हैं-

मैक्स वेबर ने औचित्यता को निम्नलिखित भागों में बाँटा है-

1. **परम्परागत औचित्यता** (Traditional Legitimacy)- जब सत्ता के प्रयोग को परम्पराओं, रीति रिवाजों व प्रथाओं के आधार पर उचित ठहराया जाता है, तो वह परम्परागत औचित्यता कहलाती ठं|

2. **करिश्मावादी औचित्यता** (Charismatic Legitimacy)- जब सत्ताधारी के अभूतपूर्व गुणों के आधार पर उसके निर्णयों व कार्यों को जनता उचित ठहराती है, तो यह करिश्मावादी औचित्यता कहलाती है। यह नेतृत्व करने वाले व्यक्ति के गुणों व उनके सही निर्णयों पर आधारित होती है। महात्मा गाँधी व पण्डित जवाहर लाल के पास करिश्माबादी औचित्यता थी। इसी प्रकार चीन में माओ-त्से-तुग और सोवियत संघ में लेनिन के पास करिश्माबादी औचित्यता थी।

3. **तार्किक-कानूनी औचित्यता** (Rational-Legal Legitimacy)- इस औचित्यता का आधार विवेक और कानून होता है। अन्य शब्दों में, यह कानूनों और विवेक पर आधारित होती है।

विश्व-विख्यात राजनीति शास्त्री **डेविड ईस्टन ने औचित्यता** को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया है-

4. **विचारात्मक औचित्यता** (Ideological Legitimacy)-जब सत्ता अपने कार्यों व निर्णयों को किसी निश्चित विचारधारा के आधार पर सही ठहराती है, तब उसे जनता जो औचित्यता प्रदान करती है, वह विचारधारात्मक औचित्यता कहलाती है। चीन में माओ-त्से तुंग ने अपने कार्यों एवं निर्णयों को मार्क्सवाद और लेनिनवाद के आधार पर उचित ठहराया। इसी प्रकार दूसरे विश्व युद्ध से पहले हिटलर ने जर्मनी में अपनी सत्ता को नाजीवादी विचारधारा के आधार पर उबित ठहराया था।

5. **संरचनात्मक औचित्यता** (Structural Legitimacy)-जब औचित्यता को संरचना के आधार पर उचित ठहराया जाता है, तब ऐसी औचित्यता को संरचनात्मक औचित्यता कहा जाता है। जब शासन नियमों पर आधारित होता है, तो शासकीय संरचनाओं के सभी कार्य भी नियमों पर आधारित होते हैं। अतः जब किसी शासन की समस्त संरचनाएं नियम अनुसार कार्य करती हैं और जनता उन पर अपना विश्वास प्रकट करती है, तो इससे शासन को औचित्यता प्राप्त हो जाती है। ऐसी औचित्यता को ईस्टन संरचनात्मक औचित्यता कहते हैं।

6. **व्यक्तिगत औचित्यता (**Individual Legitimacy)-जब जनता द्वारा किसी सत्ताधारी को उसके व्यक्तिगत गुणों के आधार पर स्वीकार किया जाता है, तो उसे व्यक्तिगत औचित्यता कहा जाता है। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, लेनिन, माओ-त्से-तुंग जैसे व्यक्तियों ने अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण लोगों का नेतृत्व किया और अपने कार्यों पर जनता का विश्वास प्राप्त किया।

स्टर्नबर्जर के अनुसार औचित्यता (वैधता) के निम्नलिखित प्रकार होते हैं-

7. **दैवीय औचित्यता** (Divine Legitimacy)- यह औचित्यता जिसे शासक अथवा सत्ताधारी दैवीय सिद्धान्त के आधार पर प्राप्त करता है, दैवीय औचित्यता कहलाती है। प्राचीन काल में राजा दैवीय अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर अपनी सत्ता को उचित ठहराते थे। इसी आधार पर वे अपने अधिकारों को उचित बताते थे। लोकतंत्र के युग में इस प्रकार की औचित्यता का महत्त्व खत्म हो गया है।

8. **नागरिक औचित्यता** (Civil Legitimacy)- यह औचित्यता नागरिकों और राज्य के बीच आपसी समझौतों पर आधारित होती है। राज्य नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करता है अर्थात् वह उनकी जान-माल की रक्षा करता है और उनके कल्याण के लिए अनेक कार्य करता है। दूसरी ओर नागरिक भी राज्य के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करते हैं। जब नागरिकों का अपने

अधिकारों व कर्तव्यों द्वारा राज्य के साथ सम्बन्ध कायम हो जाता है और नागरिक राज्य को अपने लिए उपयोगी मानते हैं और उस पर विश्वास प्रकट करती है तो इससे उत्पन्न औचित्यता नागरिक औचित्यता कहलाती है।

फ्रेडरिक ने औचित्यता की निम्नलिखित किस्मों का वर्णन किया है-

9. धार्मिक वैधता (Religious Legitimacy)- यह वह वैधता होती है, जो धर्म के आधार पर शासक को मिलती है। रोम में पोप को और भारत में पुरी के शंकराचार्य, दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम को यह वैधता प्राप्त है।

10. परम्परागत वैधता (Conventional Legitimacy)-इस वैधता अथवा औचित्यता का आधार रीति-रिवाज या परम्पराएं होती हैं। किसी संगठन में उच्च अधिकारी के आदेशों की पालंना का यही आधार होता है। जब किसी नीति या निर्णय को इस आधार पर लागू किया जाता है कि ऐसा प्राचीन काल से होता आया है, तो इसको स्वीकार करने का आधार परम्परा ही होता है। जनता ऐसे सत्ताधारी की आज्ञा का पालन परम्परा के अनुसार ही करती है।

11. दार्शनिक और नीति-शास्त्रीय वैधता (Philosophical and Ethical Legitimacy)-जब कोई शासन, मानवीय मूल्यों या आदर्शों के आधार पर जन-सहमति प्राप्त करता है, तो वह दार्शनिक या नीति शास्त्रीय औचित्यता कहलाती है। यदि शासन मूल्यों और नैतिक आदर्शों पर कार्य करेगा, तो उसे जनता का अधिक समर्थन मिलेगा। इसी को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने राजनीति और नैतिकता में गहन सम्बन्ध बताया है।

12. प्रक्रियात्मक औचित्यता (Procedural Legitimacy)-कुछ शासन व्यवस्थाओं की कार्य-प्रणाली पहले से निर्धारित होती है और सरकार उसी प्रक्रिया को अपनाते हुए अपना कार्य करती है। जनता ऐसी शासन-व्यवस्था को उसकी कार्य-प्रणाली के आधार पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। यह निर्धारित प्रक्रिया कानून या नियम पर आधारित होने के कारण स्पष्ट होती है।

13. कार्य-कुशलता एवं अनुभव सम्बन्धी औचित्यता (Legitimacy Associated with Efficiency and Experience) -किसी शासन की औचित्यता बहुत कुछ उसकी कार्य-कुशलता और अनुभव पर आधारित होती है। जब सरकार लोगों को कुशल शासन देती है, तो उसमें जनता का विश्वास बढ़ता है। इसके अतिरिक्त, शासकों के अनुभव के आधार पर भी उन्हें जनता का विश्वास प्राप्त हो जाता है। अतः कार्यकुशलता या अनुभव पर आधारित औचित्यता कार्यकुशलता तथा अनुभव-सम्बन्धी औचित्यता कहलाती है।

प्रश्न — वैधता का संकट क्या है? वैधता को कैसे सुरक्षित और बनाए रखा जा सकता है?

What is Crisis of Legitimacy? How can legitimacy be secured and maintained?

उत्तर- समय के साथ-साथ समाज में परिवर्तन आता रहता है। सामाजिक परिवर्तन का राजनीतिक व्यवसा पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। यदि राजनीतिक व्यवस्था नवीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको नहीं बदल पाती है, तो उसके सम्मुख औचित्यता अथवा वैधता का संकट पैदा हो जाता है। नवीन सामाजिक परिस्थितियों से राजनीतिक व्यवस्था के सम्मुख जो चुनौतियां पैदा होती हैं, उसे ही औचित्यता का संकट रहा जाता है।

किसी भी समाज के मूल्य और आदर्श स्थायी नहीं होते हैं, क्योंकि ये समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं और जब इनमें परिवर्तन आता है, तो इसके कारण लोगों की राजनीतिक सोच भी बदल जाती है और वे पुरानी राजनीतिक व्यवस्था को पसंद नहीं करते हैं। जब राजनीतिक व्यवस्था और लोगों में किसी कारण टकराव उत्पन्न हो जाता है, तो इससे राजनीतिक व्यवस्या के सम्मुख औचित्यता का संकट पैदा होता है।

प्रायः राजनीतिक व्यवस्था की औचित्यता के संकट के निम्नलिखित कारण होते हैं-

1. नवीन परिस्थितियां (New Developments)-औचित्यता के संकट का मुख्य कारण नवीन परिस्थितियों का उत्पन्न होना

माना जाता है। समाज के मूल्य, विचार, प्रवृत्तियां, दृष्टिकोण बदलते रहते हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप नई परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं, जब कि राजनीतिक व्यवस्था वही बनी रहती है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था लोगों का विश्वास खो देती है, क्योंकि लोग नवीन परिस्थितियों में नवीन व्यवस्था की माँग करते हैं। इस प्रकार नवीन परिस्थितियां राजनीतिक व्यवस्था के सम्मुख संकट खड़ा कर देती हैं। यदि व्यवस्था नहीं बदलती है, तो लोग विद्रोह पर उतर आते हैं। विश्व में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं, यदि उनके इतिहास को देखा जाए, तो पता लगेगा कि वहां नवीन परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक व्यवस्थाएं नहीं बदली। ऐसे में लोगों को राजनीतिक व्यवस्था को ताकत से बदलना पड़ा। जिन राजतंत्रों ने अपने को नवीन परिस्थितियों के अनुसार अनुसार परिवर्तित नहीं किया, वहाँ पर क्रातियां हुई और राजतंत्रों को उखाड़ दिया गया।

2. अत्यधिक आशाएं (Excessive Hopes)- कई बार लोग किसी राजनीतिक व्यवस्था से इतनी अधिक आशाएं करने लगते हैं कि वह राजनीतिक व्यवस्था उनकी पूर्ति नहीं कर पाती है। जब राजनीतिक व्यवस्था लोगों की आशाओं को पूरा नहीं करता है, तो उनमें राजनीतिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष बढ़ जाता है, जिससे राजनीतिक व्यवस्था के औचित्य का संकट पैदा हो जाता है। लोकतंत्र में सरकारों के पतन का मुख्य कारण लोगों की अत्यधिक आशाओं की पूर्ति न कर पाना होता है।

3. अनावश्यक राजनीतिक परिवर्तन (Un-necessary Political Change)- सरकार में जो आवश्यक परिवर्तन होता है, उससे औचित्यता का संकट पैदा नहीं होता है, किन्तु जब सरकार में अवांछित परिवर्तन हो जाता है, तो इससे औचित्यता का संकट पैदा हो जाता है। अवांछित परिवर्तन समाज की परिस्थितियों के अनुरुप नहीं होता है, क्योंकि लोगों के मूल्य और दृष्टिकोण पुराने होते हैं और ये परिवर्तन के हक में नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में औचित्यता का संकट पैदा हो जाता है।

4. खराब राजनीति (Polluted Politics)- जब देश की राजनीति में स्वार्थी और अवसरवादी तत्व घुस जाते हैं, तो इससे देश की राजनीति प्रदूषित या खराब हो जाती है। ऐसे में लोगों का देश की राजनीति पर से विश्वास उठ जाता है। जब राजनीति में अवसरवादी, भ्रष्ट और अयोग्य व्यक्ति प्रवेश कर जाते हैं, तो जनता इन लोगों से मुक्ति पाने के लिए शासन-व्यवस्था को ही बदलने का मन बना लेती हैं।

5. राजनीति में नए समूहों का प्रवेश (Entry of New Groups in Politics)-लोकतांत्रिक देशों में राजनीतिक दलों की तरह अनेक हित समूह या दबाव समूह भी कार्यरत होते हैं। ये दबाव समूह सरकार के निर्णयों और नीतियों से बहुत प्रभावित होते हैं। जब सरकार दबाव समूहों के हितों की अनदेखी कर देती है या इन पर प्रतिबन्ध लगा देती है, तो ये दबाव समूह-विशेषतः शक्तिशाली दबाव समूह-सरकार के सम्मुख संकट पैदा कर देते हैं। कई बार नए दबाव समूह अस्तित्व में आ जाते हैं और वे इतने सक्रिय हो जाते हैं कि सरकार के सामने संकट पैदा कर देते हैं। आजकल जम्मू एवं कश्मीर में ऐसे कई समूह सक्रिय हैं।

औचित्यता को कैसे प्राप्त और बनाए रखने के साधन (Means to Achieve and Maintain Legitimacy)-राजनीतिक व्यवस्था की औचित्यता को प्राप्त करने और बनाए रखने के निम्नलिखित उपाय या साधन हैं-

1. राजनीतिक व्यवस्था की परिवर्तनशीलता (Changeability of Political System)-यदि राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तनशीलता का गुण है और वह स्वयं को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेती है, तो उसके सम्मुख औचित्यता का संकट पैदा नहीं होता है।

2. परम्पराओं को उचित मान्यता (Due Recognition to Traditions)- यदि सरकार सामाजिक प्रथाओं व परम्पराओं को उचित महत्त्व देती है, तो लोग ऐसी सरकार को उचित मानते हैं और उसे अपना पूरा समर्थन देते हैं। किन्तु जो सरकार सामाजिक प्रथाओं व परम्पराओं की अवहेलना करती है, तो लोग उस सरकार से असन्तुष्ट हो जाते हैं और उसे बदलना चाहते हैं, जिससे उसकी औचित्यता का संकट पैदा हो जाता है।

3. कानून द्वारा मान्यता (Recognition by Law)-जब कानून अथवा संविधान द्वारा किसी सत्ता को मान्यता मिल जाती है, तब उसको लोगों का विश्वास प्राप्त हो जाता है। लोग ऐसी सत्ता को कानूनी और उचित मानते हैं। यदि सरकार को कानूनी मान्यता नहीं मिलती है, तो उसके सम्मुख औचित्यता का संकट पैदा होता है, जैसा कि मार्च-अप्रैल, 2015 में यमन में हुआ।

4. सरकार की प्रभाविकता (Effectiveness of Government)- यदि देश में सरकार प्रभावशाली है; अपनी नीतियों को दृढ़ता से लागू करती है और लोगों की समस्याओं का उचित हल कर देती है, तो ऐसी सरकार में लोगों का विश्वास बढ़ जाता है और लोग उसके विरुद्ध विद्रोह नहीं करते हैं। इसके विपरीत, लोग कमजोर और भ्रष्ट सरकार को पसंद नहीं करते हैं। वे उसे तुरन्त बदलना चाहते हैं; जिसके फलस्वरूप औचित्यता का संकट पैदा होता है।

5. चमत्कारी नेतृत्व (Chrismatic Leadership)-जब देश की सत्ता ऐसे लोगों के हाथों में होती है जिनका व्यक्तित्व चमत्कारी होता है, तो वे अपने गुणों के कारण लोगों का विश्वास जीत लेते हैं और उनके सामने सत्ता की औचित्यता का संकट पैदा नहीं होता है।

6. लोकतांत्रिक सरकार (Democratic Government)— वर्तमान में लोकतांत्रिक सरकार सबसे श्रेष्ठ सरकार मानी जाती है, क्योंकि यह जनता का, जनता के लिए शासन होता है; इसमें जन-कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जाता है, इसमें समानता व स्वतंत्रता का अस्तित्व होता है। इसमें शासन जनमत के अनुसार चलाया जाता है; इसमें मतदान द्वारा सरकार बदली जा सकती है और कोई क्रांति नहीं होती है। लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को लोगों का अधिक विश्वास मिलता है।

(6) सरकार के रूप (Forms of Government)

प्रश्न — संसदात्मक सरकार की विशेषताओं का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

(Critially examine the characteristics of Parliamentary Form of Government.)

अथवा

संसदात्मक सरकार के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए। (Describe the main features of Parliamentary Form of Government.)

उत्तर- संसदात्मक सरकार शासन प्रणाली को मंत्रिमण्डलीय शासन प्रणाली और उत्तरदायी शासन के नाम से जाना जाता है। इसे मंत्रिमण्डलीय शासन प्रणाली इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसमें शासन संचालन की शक्ति किसी व्यक्ति के हाथ में न होकर मंत्रिमण्डल के पास होती है। इसे उत्तरदायी शासन इसलिए कहा जाता है: क्योंकि इसमें मंत्रिमण्डल अपने समस्त कार्यों के लिए विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी होता है और ऐसा न होने पर विधानपालिका मंत्रिमण्डल के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पास करके इसे समय समाप्त होने से पूर्व हटा सकती है। संसदात्मक शासन प्रणाली में संसद सरकार का सर्वोच्च अंग होती है और उसे कानून बनाने के साथ-साथ अन्य बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। इस शासन-प्रणाली में संसद कार्यपालिका व देश के धन पर पूरा नियंत्रण रखती है।

संसदात्मक शासन प्रणाली का अर्थ (Meaning of Parliamentary Form of Government) संसदात्मक शासन प्रणाली से हमारा अभिप्राय ऐसी शासन प्रणाली से होता है, जिसमें सरकार का गठन संसद में से किया जाता है और जहाँ कार्यपालिका (सरकार) विधानपालिका के प्रति कानूनी रूप से उत्तरदायी होती है। संसदात्मक शासन प्रणाली पर अपने विचार प्रकट करते हुए कार्टर व हर्ज ने कहा है कि "संसदात्मक शासन-प्रणाली सरकार के कार्यपालिका और विधानपालिका अंगों के अन्त : जुड़ाव (Inter-locking) पर आधारित है।"

संसदात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएं/लक्षण (Characteristics/Features of Parliamentary System of Government)-संसदात्मक शासन प्रणाली की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं अथवा लक्षण है

1. दोहरी कार्यपालिका (Dual Executive)-संसदात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका दो भागों बंटी होती है-वास्तविक कार्यपालिका और नाममात्र की कार्यपालिका। इस शासन-प्रणाली में राष्ट्रपति या सम्राट राज्य का अध्यक्ष होता है। संविधान के

अनुसार वह मुख्य कार्यपालिका होता है, किन्तु वह अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग स्वयं न करके मंत्रिमण्डल की सलाह से करता है। इस नाते वह राज्य में नाममात्र की अथवा संवैधानिक कार्यपालिका ही बना रहता है। भारत में राष्ट्रपति और ब्रिटेन में राजा इसके उदाहरण हैं।

2. प्रधानमंत्री का नेतृत्व (Leadership of Prime Minister)-संसदात्मक शासन प्रणाली में प्रधानमंत्री का नेतृत्व पाया जाता है, क्योंकि वही मन्त्रियों का चयन करता है और उनमें विभागों का वितरण करता है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। राजा या राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग नहीं लेता है। इस शासन-प्रणाली में प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के सहयोग से शासन चलाता है। वह मंत्रिमण्डल के नेता के रूप में काम करता है; न कि स्वामी के रूप में।

3. सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल एक संगठित कार्य करता है। इसमें सभी मन्त्री प्रधानमंत्री के नेतृत्व के अधीन कार्य करते हैं। ये परस्पर सहयोग करते हैं और उनमें सामूहिक रूप से कार्य करने की भावना होती है। ये संसद के अन्दर और बाहर एक-दूसरे का पक्ष लेते हैं। इनके बारे में एक बड़ी प्रसिद्ध कहावत है कि "ये इकट्ठे ही तैरते और डूबते हैं।"

4. मंत्रि-परिषद् का उत्तरदायित्व (Responsibility of Council of Ministers)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में सभी मंत्री व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए संसद सदस्य मंत्रियों से उनके विभागों के बारे में कोई भी प्रश्न पूछ सकती है, जिनका उत्तर देना मंत्रियों के लिए आवश्यक है। संसद उनके गलत कार्यों की आलोचना भी कर सकती हैं। इसी कारण संसदात्मक सरकार में सरकार पूर्ण रूप से उत्तरदायी होकर शासन चलाती है।

5. मंत्री संसद के सदस्य होते हैं (Ministers are Members of Parliament)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में मंत्री संसद के सदस्य होते हैं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जो संसद का सदस्य नहीं होता है, मंत्री बना दिया जाता है, तो उसे बाद में संसद का सदस्य अवश्य बनना पड़ता है अन्यथा एक निश्चित समय के उपरान्त उसे मंत्री पद से हटना पड़ता है। भारत में यह समय सीमा छः माह निश्चित की गयी है। संसद सदस्य होने के कारण मन्त्री संसद की बैठकों में भाग लेते हैं।

6. सरकार का अनिश्चित कार्यकाल (No Fix Term of Government)-संसदात्मक शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है, क्योंकि संसद का निम्न सदन कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ (पद से हटाना) कर सकता है। भारत में ऐसा कई बार हो चुका है।

7. लोक सदन (निम्न सदन) भंग किया जा सकता है (Popular House can be dissolved)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में प्रधानमंत्री की सिफारिश पर कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भी राज्य के अध्यक्ष द्वारा लोक सदन भंग किया जा सकता है। ऐसा तब होता है, जब लोक सदन मंत्रिमण्डल को सहयोग नहीं देता है या सरकार के अल्पमत में आने पर प्रधानमंत्री देश में मध्यावधि चुनाव कराना चाहता है। भारत में कई बार ऐसा हो चुका है।

8. संसद सत्ता का केन्द्र होती है (Parliament works as Centre of Power)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में संसद सर्वोच्च स्थान रखती है। यह सरकार के दूसरे अंगों की शक्तियों में फेरबदल कर सकती है। यह कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है; देश में मौजूद नीतियों को स्वीकृति देती है और जरूरत पड़ने पर देश के संविधान में संशोधन करती है। संसद देश में मौजूद समस्याओं पर विचार करने का प्रमुख मंच होती है। संसद का इस शासन प्रणाली में प्रमुख स्थान होता है।

संसदात्मक शासन प्रणाली का प्रारम्भ ब्रिटेन में हुआ, लेकिन आगे चलकर यह अन्य देशों में भी लागू की गयी। यह वह केन्द्र होता है, जिसके इर्द-गिर्द सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था चक्कर लगाती है। संसदात्मक शासन-प्रणाली विश्व के अनेक देशों; जैसे- ब्रिटेन, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत, पाकिस्तान, नेपाल आदि में कार्यरत है।

प्रश्न — अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (Define Presidential Form of Government. Describe its characteristics.)

उत्तर- शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) के सिद्धान्त के आधार पर अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना की जाती है। इस शासन प्रणाली में सरकार के तीनों अंग-विधानपालिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका-एक-दूसरे से पृथक रहकर कार्य करते हैं। इस शासन-प्रणाली में राष्ट्रपति देश का वास्तविक शासक होता है और उसे समस्त कार्यपालिका शक्तियां प्राप्त होती हैं। वह अपने मंत्रिमण्डल का स्वामी होता है, क्योंकि वह अपनी इच्छा से मन्त्रियों की नियुक्ति करता है और पद से हटा सकता है। वह अपने कार्यों के लिए विद्यानपालिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। इस शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित होता है। प्रो. गार्नर ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "यह वह शासन-प्रणाली है, जिसमें कार्यपालिका अपनी अवधि, शक्तियों ओर कायों के सम्बन्ध में विधानपालिका से स्वतंत्र रहती है। अमेरिका अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का श्रेष्ठ उदाहरण है।

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली की विशेषताएं (Characteristics of Presidential Form of Government)- अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. राज्य का अध्यक्ष वास्तविक अध्यक्ष होता है (Head of the State is Real Head)- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति राज्य का नाममात्र का अध्यक्ष न होकर वास्तविक अध्यक्ष होता है। वह देश का मुख्य कार्यपालिका होता है और यह देश का प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से चलाता है। वह अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग स्वयं करता है। वह राज्य के अध्यक्ष के साथ-साथ सरकार का भी अध्यक्ष होता है।

2. राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल का स्वामी होता है (President is Master of Cabinet)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल का नेता न होकर स्वामी होता है। वह अपनी मर्जी से मंत्रियों को नियुक्त करता है और अपनी मर्जी से इन्हें पद से हटा सकता है। अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में एक प्रकार से मंत्रियों और राष्ट्रपति के मध्य मालिक और नौकर का सम्बन्ध होता है। वस्तुतः इसमें मंत्री राष्ट्रपति के एजेन्ट (Agents) होते हैं। इस नाते इन्हें राष्ट्रपति के निर्देशानुसार कार्य करना होता है।

3. सरकार का निश्चित कार्यकाल (Fixed Term of Government)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित होता है। विधानपालिका द्वारा कार्यकाल समाप्त होने से पहले सरकार को हटाना बहुत कठिन होता है। केवल महाभियोग द्वारा ही विधानपालिका द्वारा राष्ट्रपति को समय से पूर्व पद से हटाया जा सकता है। अमेरिका में राष्ट्रपति को चार वर्ष के लिए चुना जाता है।

4. निम्न सदन भंग नहीं किया जा सकता है (Lower House cannot be Dissolv-ed)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राज्याध्यक्ष द्वारा विधानपालिका के निम्न सदन को समय पूरा होने से पहले भंग नहीं किया जा सकता है। इस शासन प्रणाली में कार्यकाल के पूरा होने पर ही सदन के लिए चुनाव होते हैं। अमेरिका के संविधान में कांग्रेस के निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा को भंग करने की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है।

5. मंत्रियों के लिए विधानपालिका का सदस्य होना जरूरी नहीं (Membership of Legislature is not Compulsory for Ministers)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में मंत्रियों के लिए विधानपालिका का सदस्य होना आवश्यक नहीं होता है, क्योंकि ये विधानपालिका के बाहर से लिए जा सकते हैं। यह राष्ट्रपति का अधिकार होता है कि वह कहाँ से अपने मंत्री लाता है। यहाँ तक कि वह अपने दल से बाहर से भी मंत्री ले सकता है।

6. कार्यपालिका का विधानपालिका से पृथक्करण (Separation of Executive from Legislature)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका और विधानपालिका में परस्पर सम्बन्ध नहीं होता है। कार्यपालिका विधानपालिका से अलग और स्वतंत्र होती है। राष्ट्रपति व मंत्री न तो विधानपालिका से लिए जाते हैं और न ही वे विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस शासन-प्रणाली में विधानपालिका महाभियोग द्वारा ही राष्ट्रपति को पद से हटा सकती है।

7. राष्ट्रपति ही एकमात्र कार्यपालिका होता है (President is the Sole Executive)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में देश में केवल एक ही कार्यपालिका होती है और वह है राष्ट्रपति। इस शासन-प्रणाली में संसदात्मक शासन प्रणाली की तरह वास्तविक

व नाममात्र की कार्यपालिकाएं नहीं होती हैं। इसमें राष्ट्रपति पूरे प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। जिन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति अपने अधीन कर्मचारियों से कराता है, उनके लिए वह स्वयं उत्तरदायी होता है।

8. कार्यपालिका विभक्त नहीं होती है (Executive is not divided)- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाती में कार्यपालिका विभक्त नहीं होती है। इसमें एकल कार्यपालिका होती है अर्थात राष्ट्रपति ही राज्य एवं सरकार का अध्यक्ष होता है और वह संविधान द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का प्रयोग करता है। वह अपनी शक्तियां किसी को नहीं सौंपता है। उसकी शक्तियों पर संविधान द्वारा ही प्रतिबंध लगाया जाता है।

9. कार्यपालिका प्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होती है (Executive is directly responsible to the people) -अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राष्ट्रपति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुना जाता है। अतः वह अपने द्वारा किए गए सभी कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि राष्ट्रपति जनता की उपेक्षा करता है, तो जनता उसे अगले चुनाव में हरा देती है।

10. शक्ति का कोई केन्द्र न होना (No Centre of Power) - अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का पूर्ण पृथक्करण होता है, जिससे सरकार के तीनों अंग अलग-अलग रहकर कार्य करते हैं और एक अंग दूसरे अंग के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसलिए इस शासन-प्रणाली में कोई भी अंग राजनीतिक शक्ति का मुख्य केन्द्र नहीं होता है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि इस शासन-प्रणाली में शासन-शक्तियां बिखरी हुई होती हैं; क्योंकि संविधान द्वारा कानून बनाने का कार्य विधानपालिका को, शासन चलाने का कार्य कार्यपालिका को और कानूनों की व्याख्या व न्याय करने का कार्य न्यायपालिका को सौंपा गया होता है। संसदात्मक शासन-प्रणाली से भिन्न, इस शासन प्रणाली में राष्ट्रपति शासन की धुरी होता है।

प्रश्न — एकात्मक और संघात्मक शासनों में अन्तर बताइये। आपके अनुसार भारत के लिए कौन-सा शासन उपयोगी है? कारण बताइये। (Distinguish between Unitary and Federal form of Governments. Which form of Government is better for India according to you? Give reasons.)

उत्तर- शक्तियों के केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण के आधार पर शासन व्यवस्थाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है- एकात्मक शासन-व्यवस्था और संघात्मक शासन व्यवस्था। जिस शासन-प्रणाली में शासन शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है, उसको हम एकात्मक व्यवस्था कहते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, श्रीलंका और चीन में एकात्मक शासन-व्यवस्था मौजूद है। संघात्मक शासन व्यवस्था में शक्तियां संघ और संघात्मक इकाइयों में विभाजित होती हैं। भारत, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका में संघात्मक शासन व्यवस्था प्रचलित है। इन दोनों प्रकार की शासन व्यवस्थाओं की अपनी -अपनी विशेषताएं हैं, जिनके आधार पर हम इन दोनों के मध्य अन्तर कर सकते हैं-

एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में जन्तर (Difference between Unitary and Federal Forms of Government)- एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं अथवा सरकारों में निम्नलिखित अन्तर होता है-

1. शक्तियों के विभाजन के आधार पर एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में यह अन्तर है कि एकात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है अर्थात् सम्पूर्ण देश के लिए शक्ति का स्थान केन्द्रीय सरकार होती है और संघीय इकाइयों की सरकारें अथवा प्रान्तीय सरकारें इसी से अपनी शक्तियां ग्रहण करती हैं। इसके विपरीत, संघात्मक शासन व्यवस्था में शक्तियों का विभाजन होता है अर्थात शक्तियां केन्द्र व प्रान्तों के बीच विभाजित होती हैं। संघात्मक शासन व्यवस्था में संविधान में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन कर दिया जाता है। भारत के संविधान में समस्त शक्तियों को तीन सूचियों संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची में विभाजित किया गया है।

2. एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में अन्तर यह है कि एकात्मक शासन व्यवस्था में देश का संविधान लिखित व अलिखित किसी भी प्रकार का हो सकता है; जैसे-चीन में लिखित संविधान है, जब कि ब्रिटेन में अलिखित संविधान है। किन्तु

संघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों का संविधान लिखित होना जरूरी है। भारत, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि सभी संघात्मक देशों का लिखित संविधान है।

3. एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में यह भी अन्तर होता है कि एकात्मक शासन व्यवस्था के तहत देश का संविधान लचीला होता है अर्थात संशोधन की प्रक्रिया सरल होती है, जब कि संघात्मक शासन प्रणाली के तहत देश का संविधान कठोर होता है अर्थात संशोधन की प्रक्रिया कठिन होती है। ब्रिटेन का संविधान अत्यंत लचीला है, क्योंकि संसद इसमें कभी भी संशोधन कर सकती है। अमेरिका के संविधान में संशोधन हेतु अमेरिकी कांग्रेस के सोय-साथ राज्यों के विधानमण्डलों की भी स्वीकृति अनिवार्य है।

4. एकात्मक और संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में एक अन्तर यह है कि एकात्मक शासन-व्यवस्था में इकहरी शासन-व्यवस्था होती है। अन्य शब्दों में, समस्त देश में एक ही सरकार होती है और सभी कर्मचारी उसी सरकार के कर्मचारी होते हैं और सम्पूर्ण देश में एक जैसे कानून लागू होते हैं। संघात्मक शासन-प्रणाली में दोहरी शासन-प्रणाली होती है अर्थात् देश में संघीय अथवा केन्द्रीय सरकार और इकाइयों की सरकारें होती हैं। इन दोनों सरकारों का संगठन व कार्य, कर्मचारी, कानून एवं नीतियां अलग-अलग होते हैं।

5. एकात्मक और संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं में यह भी अन्तर देखने को मिलता है कि एकात्मक शासन-व्यवस्था में समस्त देश के लिए एक ही संविधान होता है, जब कि संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में संघ व राज्यों के अलग-अलग संविधान होते हैं; जैसा कि अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड में है। भारत में इस सम्बन्ध में अपवाद है।

6. एकात्मक और संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं में यह भी अन्तर होता है कि एकात्मक शासन-व्यवस्था बाले देशों में नागरिकों को एक ही नागरिकता प्राप्त होती है, जब कि संघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में नागरिकों को संघ और राज्यों की नागरिकताएं प्राप्त होती हैं। भारत में इस बारे में भी एक अपवाद है, क्योंकि यहाँ इकहरी नागरिकता की व्यवस्था है, किन्तु अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड में दोहरी नागरिकता है।

7. एकात्मक और संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं में एक प्रमुख अन्तर यह होता है कि एकात्मक शासन-व्यवस्था-वाले देशों में केन्द्रीय विधानमडल एक-सदनीय या द्विसदनीय हो सकता है, जब कि संघात्मक शासन-व्यवस्था वाले देशों में केन्द्रीय विधानमण्डल का द्वि-सदनात्मक होना जरूरी है। यहाँ एक सदन जनता का प्रतिनिधित्व करता है, और दूसरा सदन संघ में शामिल राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

8. एकात्मक शासन में विधानपालिका सर्वोच्च होती है और उसके द्वारा निर्मित कानून को कोई अन्य संस्था रद्द नहीं कर सकती है, जैसा कि ब्रिटेन में। ब्रिटेन में संसद कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था है। संघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में देश का संविधान सर्वोच्च होता है और सर्वोच्च न्यायालय को उसकी रक्षा और व्याख्या का अधिकार होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एकात्मक और संघात्मक दो अलग-अलग प्रकार की शासन-व्यवस्थाएं हैं, क्योंकि दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।

कौन-सा शासन उपयुक्त है (Which Form of Government is Suitable)-एकात्मक और संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं में कौन-सा शासन भारत के लिए उपयुक्त है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देने के लिए इन दोनों शासन-व्यवस्थाओं के गुण व दोषों को जानना जरूरी है, जो इस प्रकार हैं-

एकात्मक शासन के गुण (Merits of Unitary Government)- एकात्मक शासत्त-व्यवस्था के प्रमुख गुण इस प्रकार हैं-

1. एकात्मक शासन में शासन मजबूत रहता है, क्योंकि शासन-शक्तियां एक स्थान पर केन्द्रित होती हैं।

2. एकात्मक शासन में नीतियों में समानता और स्थायित्व रहता है, क्योंकि समस्त देश में एक ही नीति और कानून लागू होता है।

3. एकात्मक शासन में शासन पर कम खर्च होता है, अतः यह आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्यों के लिए उपयुक्त है।

4. एकात्मक शासन में समान नीतियां होने के कारण प्रशासन में कार्य-कुशलता बढ़ती है, जिससे शीघ्र निर्णय लिए जाते हैं।

5. एकात्मक शासन वाले देशों में एकता बनी रहती है, क्योंकि समस्त देश में एक ही सरकार होती है। 5

6. एकात्मक शासन आपातकाल में उपयुक्त सरकार सिद्ध होती है, क्योंकि इसमें कठोर और शीघ्र निर्णय लिए जा सकते हैं।

एकात्मक शासन के दोष (Demerits of Unitary Government)- एकात्मक शासन-व्यवस्था के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. एकात्मक शासन स्थानीय हितों की उपेक्षा होती है, क्योंकि सरकार का समस्त ध्यान राष्ट्रीय समस्याओं पर केन्द्रित होता है। इसमें स्थानीय समस्याओं की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है।

2. एकात्मक शासन बड़े-बड़े देशों के लिए उचित नहीं माना जाता है।

3. एकात्मक शासन में सरकार के निरंकुश बन जाने का डर बना रहता है।

4. एकात्मक शासन में काम के बोझ के कारण सरकार की कार्य-कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. एकात्मक शासन में संविधान सरकार के हाथ का खिलौना बन जाता है, क्योंकि यह जब चाहे इसमें संशोधन कर सकती है।

6. एकात्मक शासन विविध वाले देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

संघात्मक शासन-व्यवस्था के गुण (Merits of Federal Government)-संघात्मक शासन-व्यवस्था के गुण इस प्रकार से हैं

1. इसमें स्थानीय हितों का पूरा ध्यान रखा जाता है, क्योंकि स्थानीय सरकार इन्हें सहयोग करती है।

2. यह बड़े राज्यों के लिए उपयुक्त शासन-व्यवस्था है।

3. इसमें स्थानीय हितों व राष्ट्रीय हितों का समन्वय पाया जाता है।

4. इसमें शक्तियों के विभाजन के कारण सरकार निरंकुश नहीं हो सकती है।

5. इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देश की प्रतिष्ठा बढ़ती है।

6. यह सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत सरकार मानी जाता है।

7. यह भिन्नता वाले देशों के लिए उपयुक्त शासन-व्यवस्था मानी जाती है।

8. इसमें कठोर संविधान होने के कारण संविधान सरकार के हाथ का खिलौना नहीं बनता है।

9. इसमें विद्यमान कार्य-विभाजन से शासन की कार्य-कुशलता बढ़ती है।

संघात्मक शासन-व्यवस्था के दोष (Demerits of Federal Government)-

संघात्मक शासन-व्यवस्था के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. यह अधिक महंगी शासन-व्यवस्था है, अतः यह निर्धन देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

2. संकटकाल की दृष्टि से यह कमजोर शासन-व्यवस्था मानी जाती है।

3. इसमें निर्णय लेने में देरी होती है, जिससे प्रशासन की कार्य-कुशलता प्रभावित होती है।

4. इसमें कठोर संविधान के कारण संविधान में संशोधन करने में कठिनाई होती है।

5. इसके कारण देश के एकीकरण में कठिनाई होती है।

6. इसके कारण कई बार केन्द्र व राज्य सरकारों में तनाव बढ़ जाता है।

एकात्मक और संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं के गुण व दोषों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इन दोनों प्रकार की शासन-प्रणालियों के अपने-अपने गुण व दोष हैं अर्थात कोई भी प्रणाली बिना दोषों के नहीं है। भारत के लिए इनमें कौन-सी सरकार उपयुक्त है, इस विषय में यह कहा जा सकता है कि इनके गुण-दोषों पर विचार करने और देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों पर ध्यान देने के उपरान्त यही निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि भारत के लिए संघात्मक व्यवस्था ही उपयुक्त है।

प्रश्न — संघात्मक शासन-प्रणाली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? कौन-सी परिस्थितियों में संघात्मक शासन आवश्यक होता है?

(What are the salient features of the Federal System of Government? In what conditions the adoption of a Federal System is desirable?)

उत्तर- शासन-शक्तियों के केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण के आधार पर समस्त शासन प्रणालियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (1) एकात्मक शासन-प्रणाली और (ii) संघात्मक शासन-प्रणाली। जिन देशों में शासन-शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है, वहीं शासन का स्वरूप एकात्मक होता है और जिन देशों में शासन-शक्तियों का विभिन्न स्तरों पर वितरण होता है, वहाँ शासन का स्वरूप संघात्मक होता है।

भारत,अमेरिका, आस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड आदि में शासन का संघात्मक रूप प्रचलित है।

संघात्मक शासन की विशेषताएं (Salient Features of Federal Government)-संघात्मक शासन-प्रणाली अथवा संघात्मक सरकार में निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. शक्तियों का विभाजन (Division of Powers) - संघात्मक सरकार की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें संघ और राज्य सरकारों अथवा संघीय इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन होता है। इस शासन-प्रणाली में संविधान में शक्तियों का विभाजन दिया होता है, जिससे कि संघ और राज्य सरकारें अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में रहकर कार्य कर सकें। इसमें राष्ट्रीय महत्त्व के विषय संघ सरकार को सौंपे जाते हैं, जब कि स्थानीय विषय राज्य सरकारों को दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन के लिए तीन सूचियाँ-संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची दी गयी हैं।

2. लिखित संविधान (Written Constitution)-संघात्मक सरकार के लिए संविधान का लिखित होना आवश्यक है। लिखित संविधान में संघ और राज्यों की शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख होता है, जिसके कारण इनके मध्य अधिकार-क्षेत्र के संबंध में विवाद उत्पन्न होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है और संघीय सरकार और राज्य सरकारें अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करती हैं।

3. दोहरी शासन-प्रणाली (Dual System of Government)-संघात्मक शासन में शासन व्यवस्था दोहरी होती है। संघात्मक व्यवस्था वाले देशों में एक संघ सरकार होती है, जिसे केन्द्र सरकार भी कहा जाता है और दूसरी राज्य सरकारें होती हैं। इन दोनों की अलग-अलग नीतियां होती हैं और अलग-अलग कार्य-क्षेत्र होते हैं और अलग-अलग कर्मचारी भी होते हैं।

4. संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Constitution)- संघात्मक शासन वाले देशों में संविधान सर्वोच्च होता है,

इसीलिए संघ व राज्य सरकारों को संविधान का पालन करना पड़ता है। कोई भी सरकार इसका उल्लंघन नहीं कर सकती है। संघात्मक व्यवस्था में संविधान देश का सर्वोच्च कानून होता है और प्रत्येक सरकार, अधिकारी व नागरिक को इसके अन्तर्गत रहकर कार्य करना पड़ता है।

5. दोहरी नागरिकता (Dual Citizenship)-संघात्मक शासन वाले देशों में प्रायः दोहरी नागरिकता पायी जाती है। इसमें नागरिकों को संघ सरकार की नागरिकता प्राप्त होती है। साथ ही उन्हें उस राज्य की नागरिकता भी प्राप्त होती है, जिसके वे निवासी होते हैं। अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त है, जब कि भारत में नागरिकों को इकहरी नागरिकता प्राप्त है।

6. द्विसदनात्मक विधानपालिका (Bi-camberal Legislature)- संघात्मक शासन में संघीय विधानपालिका द्विसदनात्मक होती है। इसका एक सदन जनता का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा सदन संघ में सम्मिलित राज्यों का। उदाहरण के लिए भारत में संसद के दो सदन हैं-लोक सभा व राज्य सभा। लोक सभा जनता का प्रतिनिधित्व और राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

7. संविधान की रक्षा और व्याख्या की व्यवस्था (Provision for the Protection and Interpretation of Constitution)- संघात्मक शासन में देश के संविधान की रक्षा एवं व्याख्या की व्यवस्था की जाती है। इस कार्य को देश का सर्वोच्च न्यायालय करता है। उसे इस कार्य के लिए न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) का अधिकार प्राप्त होता है। अपने इत अधिकार का प्रयोग करते हुए वह संविधान की रक्षा करता है, क्योंकि यह अपने इस अधिकार के तहत विधानपालिका के कानून अथवा कार्यपालिका के आदेश, जो संविधान के विरुद्ध हो, को निरस्त कर सकता है। अमेरिका और भारत में यह व्यवस्था की गयी है।

संघात्मक शासन की पूर्व शर्तें (Pre-conditions of Federal Government)-संघात्मक शासन की निम्नलिखित पूर्व-शर्तें होती हैं-

1. भौगोलिक समीपता (Geographical Unity)-संघात्मक शासन के लिए जरूरी है कि राज्य का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से जुड़ा होना चाहिए। किसी राज्य का क्षेत्र छोटा या बड़ा हो सकता है। संघात्मक शासन के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसके लिए महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र एकीकृत हो। यदि ऐसा नहीं होगा, तो राज्य के विघटित होने का डर रहेगा। उदाहरण के लिए पाकिस्तान क्षेत्रीय दूरी के कारण पूर्वी पाकिस्तान को अपने साथ नहीं रख पाया।

2. समान हित (commen Interests)- संघात्मक शासन की स्थापना करने वाले प्रदेशों या इकाईयों के समान हित होने चाहिए। ऐसा होने पर ही विभिन्न प्रदेश मिलकर संघ की स्थापना कर सकते हैं और उसे संगठित रख सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की 13 राज्यों ने अपने सामान्य हितों के लिए ही अमेरिकी संघ बनाया था।

3. समरूप सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं (Uniform Social and Political Institutions)- संघात्मक शासन की स्थापना के लिए यह भी जरूरी है कि संघ में शामिल सभी इकाइयों की सामाजिक व राजनीतिक संस्थाएं एक जैसी होनी चाहिए। यदि इनमें भिन्न-भिन्न राजनीतिक संस्थाएं होंगी, तो वहाँ संघात्मक शासन लागू नहीं रह सकता है। उदाहरण के लिए भारत, अमेरिका व स्विट्जरलैण्ड राज्यों की संघीय इकाइयों की समान शासन संस्थाएं हैं।

4. केन्द्र व राज्यों के मध्य समन्वय (Co-ordination between Centre and States)- संघात्मक शासन तभी सफल हो सकता है, जब केन्द्र और राज्यों के बीच समन्वय कायम रहे। यदि इनमें समन्वय नहीं होगा, तो संघात्मक शासन प्रणाली विघटित हो जाएगी।

5. राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता (Political and National Unity)-संघात्मक शासन तभी सफल हो सकता है, जब लोगों में राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता विद्यमान हो। देश में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि लोग स्थानीय आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकें और राष्ट्रीय एकता से भी बंधे रहें। यदि लोगों में ऐसी भावना होगी, तो देश राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बंधा रहेगा और देश को

विघटित करने वाली शक्तियों पर अंकुश रहेगा।

6. सामाजिक-आर्थिक विकास (Socio-Economic Development)-किसी देश में संघात्मक शासन तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है, जब उसका सामाजिक व आर्थिक विकास हो। यदि देश में सामाजिक एकता होगी और देश की जनता शिक्षित होगी, तो उसकी व्यापक सोच होगी और वह परस्पर संगठित रहेगी अन्यथा वह विघटन को जन्म देगी। इसी प्रकार यदि देश में आर्थिक खुशहाली होगी, तो देश में सुख-चैन रहेगा अन्यथा अशांति उत्पन्न होगी। स्पष्ट है कि संघात्मक शासन को सफल बनाने की दृष्टि से देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सरकार को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

7. राजनीतिक योग्यता (Political Ability)-संघात्मक शासन के लिए ही नहीं, बल्कि हर शासन-प्रणाली की सफलता के लिए लोगों की राजनीतिक योग्यता का विशेष योगदान होता है। राजनीतिक योग्यता से हमारा तात्पर्य देश की राजनीतिक संस्कृति के स्तर से होता है। यदि लोगों का विश्वास देश की राजनीतिक व्यवस्था, मूल्यों और नेताओं में बना रहता है, तो संघात्मक शासन व्यवस्था सफलतापूर्वक चलती है अन्यथा इसका पतन हो जाता है। वस्तुतः संघात्मक शासन की सफलता के लिए जरूरी है कि लोगों का इसमें पूरा विश्वास हो।

8. विविधता में एकता की भावना (Spirit of Unity in Diversity)-संघात्मक शासन में विविधता में एकता की भावना का विशेष महत्त्व होता है। संघात्मक शासन वाले देश में लोगों में अनेक प्रकार की विभिन्नताएं विद्यमान हो सकती हैं, किन्तु यदि इनमें विविधता में एकता की भावना रहती है, तो संघात्मक शासन सफल रहता है, अन्यथा यह खत्म हो जाता है।

9. मजबूत केन्द्र की प्रवृति का तर्कसंगत आधार (Logical Base of the Trend of Strong Centre)-वर्तमान में प्रायः प्रत्येक संघात्मक देश में केन्द्र को मजबूत बनाने की प्रवृत्ति जारी है। यदि यह प्रवृत्ति इस तरह बढ़ती रही, तो इससे संघात्मक शासन की भावना को ठेस पहुँचेगी। इस बात में अवश्य ही सच्चाई है कि मजबूत केन्द्र देश की एकता व अखण्डता के लिए जरूरी है, किन्तु मजबूत केन्द्र की प्रवृति का आधार औचित्यपूर्ण अर्थात् तर्कसंगत होना चाहिए। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान में दिए 356 अनुच्छेद का सही प्रयोग राज्यों को संघ में बांधे रख सकता है।

10. राज्यों की समस्याओं का उचित समाधान (Proper Solution the Problems of States) — संघात्मक शासन वाले राज्यों की समस्याओं का केन्द्र द्वारा शीघ्र और उचित समाधान नहीं किया जाएगा, तो इससे राज्यों में असन्तोष पैदा होगा और राज्य संघ से अलग होने की माँग प्रस्तुत का देंगे और अंततः संघ टूट जाएगा। अतः केन्द्र को राज्यों की समस्याओं का उचित व शीघ्र हल करना चाहिए।

अगर किसी राज्य में ये परिस्थितियां विद्यमान होंगी, तो वहाँ संघात्मक शासन प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य करेगी, अन्यथा यह संकट में पड़ जाएगी।

प्रश्न - अध्यक्षात्मक एवं संसदात्मक शासन प्रणाली में अन्तर कीजिए। आपकी राय में इनमें से कौन-सा रूप विकासशील लोकतंत्र के लिए अधिक उपयुक्त है और क्यों?

अथवा

अमेरिका और ब्रिटेन में जो अध्यक्षात्मक और संसदात्मक सरकारें कार्य कर रही हैं, उनके मध्य अन्तर कीजिए।

अथवा

संसदात्मक तया अध्यक्षात्मक सरकारों में अन्तर बताएं। दोनों में से कौन-सी शासन प्रणाली अधिक उपयोगी है और क्यों?

उत्तर- विधानपालिका और कार्यपालिका के आपसी सम्बन्धों के आधार पर सरकारों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (i) अध्यक्षात्मक सरकार व (ii) संत्तदात्मक सरकार।

जहाँ पर कार्यपालिका एवं विधानपालिका अलग-अलग होती हैं और इनमें कोई गहरा सम्बन्ध नहीं होता है, वहाँ पर शासन का

प्रतिमान अध्यक्षात्मक होता है; जैसे अमेरिका में। इसके विपरीत, जहाँ पर विधानपालिका एवं कार्यपालिका का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है, वहाँ पर शासन का रूप संसदात्मक होता है; जैसे-ब्रिटेन और भारत। शासन के इन दोनों रूपों के अपने-अपने लक्षण होते हैं और अपने-अपने गुण व दोष। इन्हीं के आधारों पर इन दोनों प्रकार की सरकारों में अन्तर किया जाता है।

अध्यक्षात्मक और संसदात्मक सरकारों में अन्तर (Difference between Presidential and Parliamentary Governments)- अध्यक्षात्मक और संसदात्मक शासन प्रणाली में निम्नलिखित अन्तर होता है-

1. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष वास्तविक अध्यक्ष होता है और वह अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वयं करता है। इसके विपरीत, संसदात्मक शासन प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष नाममात्र का अध्यक्ष होता है और उसकी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री तथा उसका मंत्रिमण्डत करता है।

2. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष अर्थात राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल का स्वामी होता है और वह अपनी इच्छा से मन्त्रियों की नियुक्ति या पदच्युति करता है। इसके विपरीत, संसदात्मक शासन-प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष नहीं होता है, बल्कि शासन का अध्यक्ष अर्थात प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष होता है। प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमण्डल का स्वामी न होकर नेता होता है, फिर भी, मंत्रियों की नियुक्ति व पदच्युति में वह राष्ट्रपति की तरह स्वतंत्र नहीं होता है।

3. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में विधानपालिका और कार्यपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता है, क्योंकि सरकार के ये दोनों अंग अलग-अलग रहकर कार्य करते हैं। इसके विपरीत, संसदात्मक शासन-प्रणाली में सरकार के इन दोनों अंगों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मन्त्रीगण मंत्रिमण्डल के सदस्य होने के साथ-साथ विधानपालिका के भी सदस्य होते हैं और इसके कार्यों में भाग लेते हैं। संसदात्मक शासन प्रणाली में सरकार के ये दोनों अंग एक-दूसरे को पूरा सहयोग देते हैं। इस शासन प्रणाली में मंत्रियों के लिए विधानपालिका का सदस्य होना अनिवार्य है।

4. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राजनीतिक समरूपता के सिद्धान्त का पालन नहीं किया जाता है। इसमें राष्ट्रपति अलग-अलग दलों से मंत्री बना सकता है, जिस कारण इनके समान राजनीतिक विचार नहीं होते हैं। इसके विपरीत, संसदात्मक शासन प्रणाली में राजनीतिक एकता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है। इसमें प्रायः सभी मंत्री एक दल से लिए जाते हैं। इनके समान राजनीतिक बिचार होते हैं और ये परस्पर मिलकर कार्य करते हैं। संयुक्त सरकारों में भी मन्त्री एक सामान्य विचारधारा को अपनाते हैं।

5. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल स्थायी होता है, क्योंकि उसे कार्यकाल पूरा होने से पूर्व नहीं हटाया जाता है, जब कि संसदात्मक शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है, क्योंकि संसद का निम्न सदन कभी भी मंत्रिमण्डल के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके उसे पद से हटा सकता है। उदाहरण के लिए 1989 के पश्चात् भारत में कई बार सरकार को समय पूरा होने से पूर्व हटाया गया।

6. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राजाध्यक्ष द्वारा विधानपालिका के निम्न सदन को निश्चित समय से पहले भंग नहीं किया जा सकता है, जब कि संसदात्मक शासन प्रणाली में राज्याध्यक्ष, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर, संसद के निम्न सदन को कभी भी भंग कर सकता है। उदाहरण के लिए भारत में कई बार लोकसभा को निश्चित समय से पहले भंग किया जा चुका है।

7. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का विभाजन जरूरी होता है। इसी कारण इसमें सरकार के तीनों अंगों के कार्य अलग-अलग होते हैं, किन्तु संसदात्मक शासन प्रणाली में ऐसा नहीं होता है। इसमें सरकार का एक अंग दूसरे अंग के कार्य भी करता है। उदाहरण के लिए मंत्रिमण्डल कार्यपालिका कार्यों के साथ वैधानिक व न्यायिक कार्य भी करता है।

8. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल के सदस्य अलग-अलग दलों के सदस्य होने के कारण अपने कार्यों के सम्बन्ध में गोपनीयता के सिद्धान्त की पालना नहीं करते हैं। संसदात्मक शासन-प्रणाली के कार्यों के सम्बन्ध में मन्त्रियों द्वारा गोपनीयता के सिद्धान्त की पालना की जाती है।

9. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होता है न कि विधानपालिका के

प्रति, जब कि संसदात्मक शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी होता है। इसमें मन्त्रियों के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के साथ-साथ सामूहिक उत्तरदायित्व भी पाया जाता है।

10. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राष्ट्रपति राज्य और सरकार दोनों का अध्यक्ष होता है, जब कि संसदात्मक शासन प्रणाली में राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष होता है। सरकार का अध्यक्ष नहीं, क्योंकि सरकार का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है।

शासन का कौन-सा रूप अधिक उपयुक्त है? (Which Form of Government is More Suitable?)-अध्यक्षात्मक और संसदात्मक शासन प्रणालियों में कौन-सी प्रणाली अधिक उपयुक्त है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर हम इन दोनों के गुण व दोषों को समझकर ही दे सकते हैं। शासन के इन दोनों रूपों के अपने-अपने. गुण व दोष हैं।

अध्यक्षात्मक सरकार के गुण (Merits of Presidential Government)-अध्यक्षात्मक सरकार के निम्नलिखित गुण होते हैं-

1. सुदृढ़ सरकार (Strong Government)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती हैं, जिस कारण वह दृढ़ता से शासन चला सकता है।

2. स्थायी शासन (Stable Government)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित होता है, जिस कारण शासन में स्थायित्व पाया जाता है।

3. निरंकुशता का भय नहीं (No Danger of Dictatorship)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का पृथक्करण होता है, जिस कारण सरकार का कोई भी अंग निरंकुश नहीं बन सकता है।

4. प्रशासन में कार्यकुशलता (Efficiency in Administration)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सभी मंत्री अपने-अपने कार्यों के विशेषज्ञ होते हैं, जिस कारण वे अपने विभाग के प्रशासन पर पूरी पकड़ रखते हैं। दूसरे, इस शासन में शीघ्र निर्णय लिए जा सकते हैं और उन्हें दृढ़ता से लागू किया जा सकता है। इन कारणों से प्रशासन में कार्य-कुशलता आती हैं।

5. संकटकाल में अधिक उपयुक्त (More Suitable in Emergency)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को संकट काल का मुकाबला करने के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। यही कारण है कि संसदात्मक शासन प्रणाली में भी आपातकाल में राष्ट्रपति को विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

6. दलगत राजनीति का कम प्रभाव (Less Effect of Party Politics)- निःसन्देह अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राष्ट्रपति किसी दल के सहयोग से ही चुना जाता है, किन्तु वह अपने को सम्पूर्ण देश का नेता मानता है और वह दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करता है। इसके परिणामस्वरूप देश दलगत राजनीति के दुष्प्रभाव से बच जाता है।

7. नीतियों में निरन्तरता (Continuity in Policies)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सरकार का कार्यकाल निश्चित होता है, जिस कारण सरकार की नीतियों में निरन्तरता बनी रहती है।

अध्यक्षात्मक सरकार के दोष (Demerits of Presidential Government)-अध्यक्षात्मक सरकार के निम्नलिखित गुण होते हैं—

1. गतिरोध उत्पन्न होने का भय (Danger of Dead-lock)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों का पृथक्करण होता है, जिस कारण कई बार सरकार के अंगों में टकराव उत्पन्न हो जाता है। अमेरिका में ऐसा कई बार हो चुका है। निःसन्देह सरकार के अंगों में गतिरोध से सरकार की कार्य-कुशलता प्रभावित होती है।

2. उत्तरदायित्व का अभाव (Lack of Responsibility)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का एक प्रमुख दोष यह है कि इसमें शासन उत्तरदायी नहीं होता है, जिसके परिणामस्वरूप शासन तानाशाह बन सकता है। इसमें सरकार को समय पूरा होने से पहले नहीं हटाया जा सकता है।

3. न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Supremacy of Judiciary)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के विरोध में यह भी तर्क दिया जाता है कि इसमें न्यायपालिका आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली बन जाती है अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय 'विधानपालिका का तीसरा सदन' बन जाता है। इसके परिणामस्वरूप सरकार के अंगों में सन्तुलन बिगड़ जाता है और आपस में द्वेष उत्पन्न हो जाता है।

4. शासन में परिवर्तन का अभाव (Lack of Change in Government)-अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के विरुद्ध यह भी तर्क दिया जाता है कि इसमें परिस्थितियों के अनुसार सरकार में बदलाव नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सरकार का कार्यकाल निश्चित होता है।

5. राजनीतिक शिक्षा के कम अवसर (Less Opportunity of Political Education)-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का एक दोष यह भी है कि इसमें लोगों को राजनीतिक शिक्षा कम मिलती है, क्योंकि राष्ट्रपति के चुनाव के पश्चात् राजनीतिक दल अपनी गतिविधियां शिथिल कर देते हैं और लोगों से कम सम्पर्क रखते हैं। दूसरे, इस दौरान विरोधी दलों की भी कोई विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती है। अतः इस शासन-प्रणाली में जनता को राजनीतिक शिक्षा के कम अवसर उपलब्ध होते है।

6. वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था नहीं (No Provision for Alternative Government)- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का एक बड़ा दोष यह है कि इसमें संसदात्मक सरकार की तरह वैकल्पिक सरकार गठित नहीं की जा सकती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अपने विशिष्ट गुण व दोष होते हैं। **संसदात्मक सरकार के गुण (Merits of Parliamentary Government)-संसदात्मक सरकार के निम्नलिखित गुण होते हैं-**

1. उत्तरदायी शासन (Responsible Government)- संसदात्मक शासन प्रणाली का सबसे प्रमुख गुण यह है कि इसमें शासन पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है, क्योंकि सरकार अपने सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। इसमें संसद सदस्य मन्त्रियों से उनके विभागों के विषय में प्रश्न पूछते हैं और मन्त्रियों को संसद सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। संसद में मंत्रियों की आलोचना भी की जाती है। ऐसे में सरकार हमेशा उत्तरदायित्व की भावना से कार्य करती है।

2. सरकार में परिवर्तन की व्यवस्था (Provision for Change in Government)-संसदात्मक शासन-प्रणाली का एक अन्य गुण यह है कि इसमें सरकार को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार बदला जा सकता है, क्योंकि सरकार का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है।

3. सरकार की निरंकुशता का भय नहीं (No Danger of Dictatorship of Government)- संसदात्मक शासन-प्रणाली का यह भी गुण है कि इसमें सरकार तानाशाह नहीं बन सकती है। यदि कभी सरकार तानाशाह बनने की चेष्टा करेगी, तो संसद का निम्न सदन उसके विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ कर देगा। इस प्रकार संसदात्मक शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल तानाशाह नहीं बन सकता है।

4. विधानपालिका व कार्यपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध (Close Relationship between Legislature and Executive)-संसदात्मक शासन प्रणाली का एक प्रमुख गुण यह है कि इसमें सरकार के दो प्रमुख अंग अर्थात विधानपालिका व कार्यपालिका परस्पर मिलकर कार्य करते हैं। इस शासन-प्रणाली में इनके मध्य टकराव नहीं होता है, जिससे सरकार की कार्यकुशलता बढ़ती है।

5. जनमत पर आधारित शासन (Public Opinion-based Government)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में सरकार पूर्ण रूप से जनमत पर आधारित होती है। इसीलिए सरकार जनमत की इच्छानुसार नीतियां बनाती है। यदि सरकार ऐसा नहीं करेगी, तो वह अगले चुनाव में हार जाएगी। अतः सरकार जान का खतरा उठाकर ही जनमत की उपेक्षा कर सकती है।

6. लोगों को अधिक राजनीतिक शिक्षा (More Political Education to People) —संसदात्मक शासन-प्रणाली में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के मुकाबले में जनता को अधिक राजनीतिक शिक्षा मिलती है, क्योंकि इसमें विरोधी दल सरकार के गलत कार्यों की आलोचना करते रहते हैं। साथ ही समय-समय पर होने वाले चुनाव भी लोगों को राजनीतिक दृष्टि से

जागरूक बनाते हैं।

7. अधिक लोकतांत्रिक शासन (More Democratic Government)- संसदात्मक शासन प्रणाली अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के मुकाबले अधिक लोकतांत्रिक मानी जाती है, क्योंकि इसमें शासन जनता के प्रतिनिधि चलाते हैं; शासन जनमत पर आधारित होता है और शासन पूरी तरह उत्तरदायी होता है। यही कारण है कि इस शासन प्रणाली को अधिक लोकतांत्रिक माना जाता है।

संसदात्मक सरकार के दोष (Demerits of Parliamentary Government)-संसदात्मक सरकार के निम्नलिखित दोष होते हैं-

1. अस्थिर शासन (Unstable Government)-संसदात्मक शासन प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह होता है कि इसमें शासन में स्थिरता नहीं होती है, क्योंकि इसमें जल्दी-जल्दी सरकारें बदलती रहती हैं। भारत में 1996 के पश्चात् कई सरकारें बनीं और शीघ्र गिरी हैं। ऐसे में इससे शासन में स्थायित्व का अभाव होता है।

2. महंगी शासन-प्रणाली (More Costly)-संसदात्मक शासन प्रणाली को महंगी शासन-प्रणाली के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इसमें बहुत फिजूलखर्ची होती है। अतः यह उन देशों के लिए उपयुक्त नहीं, जो गरीब हैं।

3. मंत्रिमण्डल की तानाशाही (Dictatorship of Cabinet)-संसदात्मक शासन-प्रणाली के विपक्ष में यह भी तर्क दिया जाता है कि इस शासन-प्रणाली में मंत्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप विधानपालिका अपना महत्त्व खो देती है।

4. नीतियों में अस्थिरता (Unstability in Policies)-संसदात्मक शासन प्रणाली में सरकारें जल्दी-जल्दी बदलती रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप सरकार की नीतियों में स्थायित्व नहीं पाता है।

5. दलीय राजनीति का प्रभाव (Impact of Party Politics)- संसदात्मक शासन प्रणाली पर यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें दलीय राजनीति का प्रभाव प्रशासन पर पड़ता है। जो दल सत्ता में होता है, वह अपनी नीतियों को जनता पर जबरदस्ती लादता है और विरोधी दल के अच्छे सुझावों को भी नहीं मानता है।

6. विरोधी दल द्वारा अनावश्यक आलोचना (Unnecessary Criticism by Opposition) — संसदात्मक शासन-प्रणाली में कई बार विरोधी दल रचनात्मक विरोध नहीं, बल्कि विरोध के लिए सरकार का विरोध करता है। विरोधी दल की यह प्रवृत्ति उचित नहीं है, क्योंकि इससे जनता उत्तेजि होती है और सरकार भी ठीक से अपना कार्य नहीं कर पाती है।

7. संकटकाल में अनुपयुक्त (Not Suitable in Emergency)-क्योंकि संसदात्मक शासन-प्रणाली कमजोर शासन को जन्म देती है, अतः इसे संकटकाल के लिए अनुपयुक्त माना जाता है।

8. राष्ट्रीय हितों की अवहेलना (Ignorance of National Interests)-संसदात्मक शासन-प्रणाली में सरकार राष्ट्रीय हितों की तुलना में दलीय हितों को अधिक महत्त्व देती है। इसमें राष्ट्रीय हितों को नुकसान और दलीय हितों को लाभ होता है। अध्यक्षात्मक और संसदात्मक शासन प्रणालियों के गुण व दोषों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों प्रणालियों के अपने-अपने गुण-दोष हैं। फिर भी, यदि लोगों में जागरूकता है; मजबूत विरोधी दल तथा स्वस्थ दलीय व्यवस्था है, तो किसी देश के लिए संसदात्मक शासन प्रणाली ही उपयुक्त है।

(7) सरकार के अंग (Organs of Government)

प्रश्न — विधानपालिका से आप क्या समझते हैं? आधुनिक काल में विधानपालिका के कार्यों का विवरण दीजिए। (What do you understand by legislature? Describe the functions of legislature in modern time.)

अथवा

आधुनिक विधानमण्डल के कार्यों का परीक्षण कीजिए। (Examine the functions of Modern Legislature.)

उत्तर- सरकार के तीन प्रमुख अंग होते हैं-विधानपालिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) व न्यायपालिका (Judiciary)। ये तीनों अंग मिलकर सरकार के सभी कार्यों को पूरा करते हैं। विधानपालिका का प्रमुख कार्य कानून-निर्माण करना है। कार्यपालिका का प्रमुख कार्य कानूनों को लागू करना एवं शासन का संचालन करना तथा न्यायपालिका का प्रमुख कार्य न्याय करना होता है। लोकतंत्र में शासन तभी ठीक प्रकार से चलता है, जब सरकार के ये तीनों अंग अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करें अन्यथा लोकतंत्र की सफलता सन्देहपूर्ण हो जाती है।

विधानपालिका का अर्थ (Meaning of Legislature) - विधानपालिका अथवा विधायिका सरकार का प्रमुख अंग होता है। सरकार के अन्य अंगों की तुलना में इस अंग को सर्वोच्चता प्राप्त होती है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि यह जनता का प्रतिनिधित्व करती है। विधानपालिका के संबंध में यह कहा जाता है कि ब्रिटिश संसद विश्व की अन्य संसदों की जननी है। यह कहावत इसलिए उचित मानी जाती है, क्योंकि विश्व में सर्वप्रथम ब्रिटिश संसद का ही उदय हुआ और विश्व की अन्य संसदें इसके बाद अस्तित्व में आयीं।

विधानपालिका एक ऐसी संस्था है, जो कानूनों का निर्माण करती है। सभी देशों में विधायिका का प्रमुख कार्य कानूनों का निर्माण करना ही है, किन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो यह कार्यपालिका को परामर्श देने वाली एक संस्था है। विधायिका का यह अर्थ भले ही प्राचीन काल में उपयुक्त हो, किन्तु आधुनिक काल में इस अर्थ को ठीक नहीं माना जाता है। आधुनिक काल में इसे सरकार का एक ऐसा अंग माना जाता है, जो जनता का प्रतिनिधित्व करता है औ जिसका प्रमुख कार्य देश के लिए कानून बनाना होता है।

संगठन की दृष्टि से विधानपालि दो प्रकार की होती है- (i) एक-सदनीय विधानपालिका और (ii) द्वि-सदनीय विधानपालिका। विश्व में विधानपालिका के ये दोनों रूप प्रचलित हैं। भारत, अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस आदि देशों में द्वि-सदनीय विधानपालिका है, जब कि चीन में एक सदनीय विधानपालिका है।

विधानपालिका के कार्य (Functions of Legislature)- आधुनिक युग में विधानपालिका अथवा विधायिका राज्य में निम्नलिखित कार्य करती है-

1. वैधानिक कार्य (Legislative Functions)-प्रत्येक राज्य में विधायिका का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। विधायिका हर वर्ष अनेक नए कानूनों का निर्माण करती है और पुराने कानूनों में संशोधन करती है। वास्तव में विधायिका की स्थापना ही कानून-निर्माण के लिए हुई है।

2. वित्तीय कार्य (Financial Functions)-आधुनिक युग में विधायिका को वित्तीय कार्य भी सौंपे गए हैं। विधायिका बजट के माध्यम से देश के वित्त पर अपना पूरा नियंत्रण रखती है। सरकार द्वारा विधायिका की स्वीकृति के बिना जनता पर कोई नया कर नहीं लगाया जा सकता है और न ही किसी कार्य पर धन खर्च किया जा सकता है। प्रत्येक देश की विधायिका (संसद) हर वर्ष देश का बजट पारित करती है। भारत की संसद हर वर्ष फरवरी में देश का बजट पारित करती है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायिका सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट को बिना व्यापक संशोधनों के पारित कर देती है, किन्तु अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देश अमेरिका में विधायिका (कांग्रेस) सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट में व्यापक फेर-बदल कर देती है।

3. कार्यपालिका पर नियंत्रण (Control over Executive)-विधायिका का एक प्रमुख कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण रखना भी है। जिन राज्यों में संसदीय शासन होता है, उनमें विधायिका कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है, जब कि अध्यक्षात्मक शासन वाले राज्यों में यह कार्यपालिका को अप्रत्यक्ष ढंग से नियन्त्रित करती है। विधायिका के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न पूछकर, विभिन्न मंत्रालयों की रिपोटों पर विचार करके, मंत्रियों के कार्यों की आलोचना करके, कार्यपालिका पर पूरा नियंत्रण रखती है। विधायिका विभिन्न मामलों की जाँच के लिए जाँच समिति भी गठित कर सकती है। अमेरिका व भारत में

अनेक मामलों की जाँच के लिए विधानपालिका द्वारा जाँच समितियाँ गठित की जाती हैं।

4. निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य (Elective Functions) कई देशों में विधायिका निर्वाचन सम्बन्धी कार्य भी करती है। भारत में संसद के सदस्य राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। यहाँ लोक सभा अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनती है और राज्य सभा अपना उप-सभापति चुनती है। इसी प्रकार स्विट्जरलैंड में संघीय सभा के दोनों सदन सदस्य संयुक्त रूप से संघीय परिषद को चुनते हैं। जापान की डायट जापान के प्रधानमंत्री को चुनती है। पूर्व सोवियत संघ में सुप्रीम सोवियत मन्त्रि-परिषद्, प्रीसिडियम व न्यायाधीशों का चुनाव करती थी। इसी तरह चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री का चुनाव करती है। इस प्रकार बहुत से देशों में विधायिका निर्वाचन सम्बन्धी कार्य भी करती है।

5. न्याय-सम्बन्धी कार्य (Judicial Functions)-वैसे तो हर देश में न्याय करने का कार्य न्यायपालिका का होता है किन्तु कई देशों में विधायिका भी न्यायिक कार्य करती है। भारत में संसद राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों, उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों, मुख्य चुनाव आयुक्त आदि को महाभियोग द्वारा पद से हटा सकती है। इसी प्रकार अमेरिका की कांग्रेस राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति व सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को महाभियोग द्वारा हटा सकती है। एक समय ब्रिटेन की लार्ड सभा तो देश का प्रमुख अपीलीय न्यायालय हुआ करती थी। स्पष्ट है कि कुछ देशों में विधायिका न्यायिक कार्य भी करती है।

6. संशोधन सम्बन्धी कार्य (Amendment Functions)- प्रत्येक देश में विधायिका संविधान में संशोधन का कार्य करती है। भारत में संविधान में अधिकतर संशोधन संसद द्वारा किए जाते हैं। संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संसद के साथ-साथ राज्यों के विधानमण्डलों, की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। अमेरिका में कांग्रेस राज्य विधानमण्डलों के साथ मिलकर संघीय संविधान में संशोधन कर सकती है। इसी प्रकार अन्य देशों में भी संविधान में संशोधन का कार्य विधानपालिकाओं द्वारा किया जाता है।

7. अन्य कार्य (Other Functions)-उपर्युक्त कायों के अतिरिक्त विधायिका कुछ अन्य कार्य भी करती है; जैसे-इसके द्वारा लोगों की समस्या पर विचार किया जाता है। यह विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद के एक मंच का कार्य करती है। यह सरकार को नए विभाग स्थापित करने की स्वीकृति देती है। यह जनता का प्रतिनिधित्व करती है। यह पर्यवेक्षण और निगरानी का कार्य करती है। यह राजनीतिक समाजीकरण व हित समूहीकरण का कार्य करती है। यह जन-प्रतिनिधियों की योग्यताओं व अयोग्यताओं का भी निर्धारण करती है।

कई देशों में यह राष्ट्रपति की आपातकाल की घोषणाओं को स्वीकृति प्रदान करती है। भारत में संसद राष्ट्रपति द्वारा की गयी आपातकाल की घोषणाओं को मंजूरी देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विधानपालिका या विधायिका राज्य में अनेक कार्य करती है, किन्तु इसका प्रमुख कार्य कानून बनाना ही होता है। इस नाते यह कानून बनाने वाली प्रमुख संस्था होती है।

प्रश्न — 20वीं शताब्दी में विधानपालिका के पतन के कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
(Briefly describe the causes for the declime of Legislature in 20th century.)

उत्तर- यदि विश्व की विधानपालिकाओं (Legislatures) का अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इनकी स्थिति में पहले की तुलना में बहुत गिरावट आयी है। विधानपालिकाओं ने अपने 19वीं शताब्दी के गौरव को खोया है और वर्तमान में ये कार्यपालिका के हाथों का खिलौना बन कर रह गयी हैं। विधानपालिकाओं के पतन को देखकर लार्ड ब्राइस ने अपनी पुस्तक 'Modern Democracies' में एक अध्याय का शीर्षक ही 'विधानपालिकाओं का पतन' (Decline of Legislatures) रखा है, जिसमें उसने विधानपालिकाओं के गिरते स्तर पर अपने विचार प्रकट किए हैं। लार्ड ब्राइस की तरह के.सी. व्हीयर ने भी अपनी पुस्तक 'Legislatures' में 'विधानपालिकाओं का पतन' नामक एक अध्याय जोड़ा है, जिसमें उसने इनके पतन के कई पहलुओं का वर्णन किया है। विधानपालिकाओं के पतन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न उठाए गए हैं-

1. क्या विधानपालिकाओं की शक्तियों में कमी आयी है?

2. क्या विधानपालिकाओं की कार्य करने की क्षमता में कमी आ गयी है?
3. क्या विधानपालिकाओं के प्रति जन-सम्मान में कमी आयी है?
4. क्या विधानपालिकाओं में लोगों की रुचि कम हुई है?
5. क्या विद्यानपालिकाओं के सदस्यों के व्यवहार में गिरावट आयी है?
6. क्या विधानपालिका-सदस्यों के शिष्टाचार में कमी आयी है?
7. क्या विधानपालिकाओं का पतन सरकार के अन्य अंगों के मुकाबले में हुआ है।

इस विषय में के. सी. व्हीयर का मानना है कि यदि उपर्युक्त सभी प्रश्नों के उत्तर खोजे जाएं, तो पता चलेगा कि विधानपालिकाओं का स्तर राज्य की अन्य शासन-संस्थाओं की तुलना में गिरा है, क्योंकि अन्य संस्थाओं ने अपने को बहुत सुधारा है और अपने कार्य-क्षेत्र में वृद्धि की है।

इस बारे में विद्वानों द्वारा **विधानपालिकाओं के पतन के निम्नलिखित कारण** बताए गए हैं-

1. कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि (Increase in the Powers of Executive)-विश्व में पिछले कुछ दशकों में कार्यपालिका की शक्तियों में बहुत वृद्धि हुई है, जिसका दुष्प्रभाव विधानपालिका पर पड़ा है। कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि के अनेक कारण रहे हैं; जैसे-युद्ध, आतंकवाद, शीत युद्ध, गरीबी उन्मूलन व बेरोजगारी दूर करना आदि। पिछले कुछ सालों में प्रत्येक देश में कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गयी है। कार्यपालिका के अधिक शक्तिशाली बन जाने का यह परिणाम निकला है कि विधानपालिका कार्यपालिका के हाथ का खिलीना बनकर रह गयी और इसने रबड़ की मोहर की तरह काम करना प्रारम्भ कर दिया है।

2. प्रदत-विधायन (Deligated Legislation)-विधानपालिका की स्थिति कमजोर करने का दूसरा मुख्य कारण प्रदत विधायन का प्रचलन माना जाता है। इसके प्रचलन ने विधानपालिका के कानून बनाने के अधिकार को इससे ले लिया है। वस्तुतः यह शक्ति स्वयं विधानपालिका ने कार्यपालिका को दी है। वर्तमान में कार्यपालिका अपने इस अधिकार का अधिक-से-अधिक प्रयोग कर रही है।

3. रेडियो और टेलीविजन की भूमिका (Role of Radio and Television)-आधुनिक युग में रेडियो और टेलीविजन का बहुत महत्त्व बढ़ा है और ये मीडिया का प्रमुख साधन बन गए हैं। इनका कार्यपालिका द्वारा अधिक-से-अधिक प्रयोग किया जाता है, जिसका जनता पर यह प्रभाव पड़ता है कि जनता विधानपालिका के मुकाबले में कार्यपालिका को सरकार का प्रमुख अंग मानने लग जाती है।

4. दबाव गुटों का विकास (Evolution of Pressure Groups)-आधुनिक समय में देश की राजनीति राजनीतिक दलों के साथ-साथ दबाव समूहों की भी प्रमुख भूमिका होती है। पहले जनता विधानपालिका को अपनी शिकायतें भेजती थी और उनका समाधान करवाती थी, किन्तु वर्तमान में जनता अपनी शिकायतों को इन दबाव समूहों के माध्यम से उठाती है। ये दबाब समूह सरकार पर दबाव बनाकर इन शिकायतों को सरकार से दूर करवाते हैं। बहुत से निर्णय कार्यपालिका द्वारा पहले ही ले लिए जाते हैं। विधानपालिका को तो केवल फैसलों की जानकारी मात्र दी जाती है।

5. समय का अभाव (Lack of Time)-काम की तुलना में विधानपालिका के पास समय की कमी है। समय की कमी के कारण विधानपालिका अपने बहुत से कार्य कार्यपालिका को सौंप देती है। इसके द्वारा मोटे तौर पर कानून बनाए जाते हैं और इनके संबंध में नियम, उपनियम बनाने का अधिकार कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है। इससे कानून बनाने की इसकी शक्ति में कमी आयी है।

6. सुसंगठित और अनुशासित राजनीतिक दल (Well-organised and Disciplined Political Parties) - वर्तमान युग में राजनीतिक दल अधिक संगठित और अनुशासित हो गए हैं। इसके कारण विधानपालिका और कार्यपालिका में गहरा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। क्योंकि कार्यपालिका में सतारूढ़ दल के प्रमुख नेता होते हैं, अतः कार्यपालिका विधानपालिका पर अपना प्रभाव रखती है। ऐसे में विधानपालिका कार्यपालिका के फैसलों को बिना किसी आपत्ति के स्वीकृत कर देती है।

7. काम का अधिक बोझ (Excessive Workload)— वर्तमान युग में राज्य ने लोक कल्याणकारी राज्य का रूप धारण कर लिया है। कल्याणकारी राज्य की धारणा से सरकार पर काम का बोझ बढ़ गया है, जिसका प्रभाव सरकार के सभी अंगों पर पड़ा है। अधिक कार्यभार होने के कारण विधानपालिका ने अपने कुछ कार्य कार्यपालिका को दे दिए हैं। इससे विधानपालिका की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची है।

8. विशेषज्ञों की समितियों का उदय (Rise of Committees of Experts)-आजकल कानून का स्वरूप बड़ा जटिल हो गया है, अतः साधारण बुद्धि के लोग इन्हें ठीक से नहीं समझ सकते हैं। इस स्थति में विधेयक तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता महसूस की जाती है, जिससे विधानपालिका में समिति प्रथा का प्रचलन हुआ। आज इन समितियों को 'Mini Legislatures कहा जाने लगा है। कानून-निर्माण प्रक्रिया में इन समितियों की विशेष भूमिका होती है।

9. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सर्वोच्चता (Supermacy of International Relations)-वर्तमान युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग माना जाता है। इस युग में अन्तराष्ट्रीय संबंधों का बहुत महत्त्व बढ़ गया है। आज किसी देश की शासन प्रणाली को केवल उस देश की आन्तरिक घटनाएं ही प्रभावित नहीं करती हैं, बल्कि विदेश घटनाएं भी प्रभावित करती हैं। अतः आज प्रत्येक देश विदेशी सम्बन्धों को प्रमुखता देता है। विदेशी नीति का निर्माण व संचालन कार्यपालिका ही करती है, जिससे उसका महत्त्व बढ़ गया है और विधानपालिका का महत्त्व कम हो गया है।

10. कल्याणकारी राज्य का उदय (Emergence of Welfare State)-आधुनिक युग में राज्य का स्वरूप बदल गया है। आज राज्य पुलिस राज्य न होकर लोक कल्याणकारी संस्था बन गया है। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से राज्य के कार्य-क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अब जनता हर छोटे-बड़े कार्य के लिए राज्य की ओर देखती है। इससे कार्यपालिका का महत्त्व बढ़ा है और विधानपालिका का महत्त्व घटा है।

11. युद्ध और संकट (War and Emergency)-युद्ध और संकट ने भी कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि की है। युद्ध और संकट के समय कार्यपालिका को विशेष अधिकार मिल जाते हैं। कार्यपालिका को युद्ध या संकट की समाप्ति पर इन्हें वापस कर देना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता है। कार्यपालिका युद्ध के पश्चात् भी युद्ध के अवसर पर मिली व्यापक शक्तियों को कम करने के लिए तैयार नहीं होती है। इस प्रवृत्ति ने कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि की है और इससे विधानपालिका कमजोर हुई है।

विधानपालिका के पतन के उपर्युक्त कारणों को देखकर हम कह सकते हैं कि अब यह पहले जैसी मजबूत संस्था नहीं रही है। कभी यह सर्वोच्च संस्था होती थी, किन्तु आज यह कमजोर संस्था बन गयी है। यदि विधानपालिका ने अपने दोषों को दूर नहीं किया, तो यह भविष्य में और भी अधिक कमजोर हो जाएगी।

प्रश्न— अमेरिकी सीनेट संसार का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन है, वर्णन कीजिए।
(Senate of United State of America is the most powerful second chamber of the world. Discuss.)

उत्तर- सीनेट अमेरिकी कांग्रेस अर्थात् विधानपालिका का दूसरा सदन है। इसे उच्च सदन भी कहा जाता है। अमेरिकी सीनेट को न केवल कांग्रेस का शक्तिशाली सदन, बल्कि विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन कहा जाता है और यह बात सत्य भी है, क्योंकि विश्व में किसी भी देश का दूसरा सदन अमेरिकी सीनेट के समान शक्तिशाली नहीं है। विश्व के अन्य देशों के दूसरे सदनों से अमेरिकी सीनेट की तुलना करके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अमेरिकी सीनेट विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन है। यहाँ कुछ प्रमुख देशों के दूसरे सदनों से अमेरिकी सीनेट की तुलना की जा रही है-

1. अमेरिकी सीनेट और लार्ड सभा (American Senate and House of Lords)- जहाँ अमेरिका की सीनेट को प्रतिनिधि सभा के बराबर वैधानिक शक्तियां प्राप्त हैं, वहीं ब्रिटिश संसद में लार्ड सभा, जो उसका उच्च सदन है, को वैधानिक क्षेत्र में कमजोर कर दिया गया है। अमेरिका में कोई विधेयक कांग्रेस में तभी पारित हुआ माना जाता है, जब वह सीनेट और प्रतिनिधि सभा दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है, अन्यथा वह कांग्रेस द्वारा पारित नहीं माना जाता है। ब्रिटेन में कॉमन सभा को लार्ड सभा की तुलना में अधिक कानूनी शक्तियां प्राप्त हैं। लार्ड सभा किसी साधारण विधेयक को पारित होने से

स्थायी रूप से नहीं रोक सकती है। इसे किसी साधारण विधेयक को अधिक-से-अधिक एक साल और धन विधेयक को अधिक -से-अधिक 30 दिन तक रोकने का अधिकार है। जहाँ तक कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने का प्रश्न है, तो इस बारे में भी अमेरिकी सीनेट लार्ड सभा की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि अमेरिकी सीनेट राष्ट्रपति की नियुक्ति-सम्बन्धी शक्तियों पर नियंत्रण रखती है। वह प्रतिनिधि सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति को पद से हटा सकती है। इस राष्ट्रपति द्वारा की गयी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि व समझौतों को भी रद्द कर सकती है। यह जाँच समिति गठित करने प्रशासनिक विभागों के कार्यों की जाँच भी कर सकती है। इसके विपरीत, ब्रिटेन में लार्ड सभा कार्यपालिका पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण रखने वाला सदन ही है, क्योंकि यह सरकार को अपदस्थ नहीं कर सकता है।

2. अमेरिकी सीनेट और भारत की राज्य सभा (American Senate and Council of States of India)-अमेरिकी सीनेट भारत की राज्य सभा से भी शक्तिशाली सदन है। भारत में कानून बनाने के मामने में लोक सभा और राज्य सभा दोनों को सिद्धान्त रूप में बराबर अधिकार हैं, किन्तु व्यवहार में लोक सभा राज्य सभा से अधिक शक्तिशाली सदन है। जहाँ तक कार्यपालिका पर नियंत्रण का प्रश्न है, तो राज्य सभा लार्ड सभा की तरह इस पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है; सीनेट की तरह प्रत्यक्ष नियन्त्रण नहीं। जहाँ तक धन विधेयकों का मामला है, तो राज्य सभा केवल 14 दिन तक ऐसे किसी विधेयक को पारित होने से रोक सकती है, जब कि अमेरिकी सीनेट को इस विषय प्रतिनिधि सभा के बराबर अधिकार प्राप्त है। सीनेट कार्यपालिका पर नियन्त्रण के मामलों में राज्य सभा से अधिक शक्तिशाली सदन है।

3. अमेरिकी सीनेट और फ्रांसीसी सीनेट (American Senate and French Senate)-फ्रांस को सीनेट कानून बनाने के क्षेत्र में बहुत शक्तिशाली सदन है, किन्तु तब भी यह अमेरिकी सीनेट से कम शक्तिशाती सदन है। यदि फ्रांस में विधानपालिका के दोनों सदनों में किसी विधेयक को लेकर विवाद हो जाए, तो उसे दोनों सदनों की संयुक्त समझौता समिति द्वारा सुलझा लिया जाता है और यदि संयुक्त समझौता समिति इस कार्य में सफल नहीं होती, तो वहीं राष्ट्रीय सभा का निर्णय अन्तिम होता है। अमेरिका में ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा विधेयक का पारित किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार चाहे दोनों सीनेट सिद्धान्त में बराबर हों, किन्तु व्यवहार में अमेरिकी सीनेट की स्थिति फ्रांसीसी सीनेट की स्थिति की तुलना में मजबूत है।

4. अमेरिकी सीनेट और स्विस कौंसिल ऑफ स्टेट्स (American Senate and Swiss Council of States)-स्विट्जरलैंड में दूसरे सदन को 'कॉसिल ऑफ स्टेट्स' कहा जाता है। यह सदन भी अमेरिकी सीनेट जितना शक्तिशाली सदन नहीं है। भले ही स्विट्जरलैंड में फैडरल असेम्बली (Federal Assembly) के दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु वहाँ कौंसिल ऑफ स्टेट्स ने अपने आप निम्न दर्जा ग्रहण कर लिया है। वहाँ कानून-निर्माण की अन्तिम शक्ति जनता के पास है। अतः स्विस कौंसिल ऑफ स्टेट्स प्रथम सदन से कानून बनाने के मामले में टक्कर नहीं लेती है। जहाँ तक कार्यपालिका शक्तियों का सम्बन्ध है, तो अमेरिकी सीनेट इसकी तुलना में मजबूत स्थिति में है।

इस प्रकार जब हम विश्व के विभिन्न देशों की विधानपालिकाओं के दूसरे सदनों से अमेरिकी सीनेट की तुलना करते हैं, तो हम अमेरिकी सीनेट को मजबूत स्थिति में पाते हैं। अतः यह कहना कि अमेरिकी सीनेट विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन है, उचित प्रतीत होता है।

सीनेट क्यों शक्तिशाली सदन है? (Why is Senate Powerful Chamber?)- सीनेट के शक्तिशाली होने के निम्नलिखित कारण हैं-

1. प्रतिनिधि सदन के समान शक्तियां (Equal Powers to House of Representatives)- अमेरिका में सीनेट को प्रतिनिधि सदन के बराबर वैधानिक, वित्तीय, संवैधानिक और न्याय-सम्बन्धी शक्तियां प्राप्त हैं, जब कि विश्व के अन्य देशों में दूसरे सदन को निम्न सदन की तुलना में कम शक्तियां दी गयी हैं।

2. लम्बा कार्यकाल (Long Term)- अमेरिका में प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को दो वर्ष के लिए चुना जाता है, जब कि सीनेट के सदस्यों को छः वर्ष के लिए चुना जाता है। इस लम्बे कार्यकाल की वजह से लोग प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा सीनेट के सदस्य बनना चाहते हैं।

3. प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election)- अमेरिका में प्रतिनिधि सदन की तरह सीनेट के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्यक्ष चुनाव के कारण इसे निम्न सदन की तरह लोकतांत्रिक सदन होने का गौरव प्राप्त है।

4. भाषण की स्वतंत्रता (Freedom of Speech)-सीनेट के सदस्यों को किसी विषय पर बोलने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता है, जब कि प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की बोलने की यह स्वतंत्रता सीमित होती है। सीनेट में कोई भी सदस्य जितना बोलना चाहे बोल सकता है।

5. बड़ा चुनाव क्षेत्र (Large Constituency)-सीनेट के सदस्यों का चुनाव-क्षेत्र प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के चुनाव-क्षेत्र की तुलना में बहुत ही विस्तृत होता है। अमेरिका संघ में 50 राज्य हैं और प्रत्येक राज्य को सीनेट के लिए दो सदस्य चुनने का अधिकार है। इस प्रकार सीनेट के सदस्य प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के मुकाबले अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

6. कम सदस्य संख्या (Small Membership)-सीनेट के सदस्यों की संख्या 100 है, जब कि प्रतिनिधि सभा में 435 सदस्य होते हैं। कम संख्या होने के कारण सीनेट के सभी सदस्यों को सदन में अपने विचार प्रकट करने का मौका मिल जाता है। इस सदन में प्रत्येक विषय पर खुलकर विचार होता है। अमेरिकी लोग सीनेट के वाद-विवाद को अधिक ध्यान से सुनते व पढ़ते हैं। लार्ड ब्राइस ने इस सदन के बारे में कहा है कि "इसका लघु आकार योग्य और होनहार व्यक्तियों को योग्यता प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करता है तथा प्रतिभा एवं चातुर्य वाले व्यक्तियों को अपना पराक्रम दिखाने तथा राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसिद्धि प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करता है।"

7. संसदीय शासन का अभाव (Absence of Parliamentary Government) - जिन देशों में संसदीय शासन प्रणाली होती है, उनमें निम्न सदन को अधिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, क्योंकि यह सदन देश की जनता का प्रतिनिधित्व करता है और यह सदन ही कार्यपालिका को 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके कभी भी पद से हटा सकता है। भारत, ब्रिटेन तथा जापान में ऐसा ही है। किन्तु जहाँ अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली होती है, वहाँ ऐसा नहीं होता है, क्योंकि वहाँ कार्यपालिका निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है। अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है। वहाँ सीनेट को कार्यपालिका पर अंकुश लगाने की शक्ति दी गयी है, प्रतिनिधि सभा को नहीं। अतः कार्यपालिका पर नियंत्रण के मामले में सीनेट प्रतिनिधि सभा से अधिक शक्तिशाली सदन है।

8. महाभियोग न्यायालय (Court of Impeachment)- अमेरिका में सीनेट को ही वास्तव में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति व सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों व उच्च अधिकारियों पर महाभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त है। यहाँ प्रतिनिधि सभा तो इन पर केवल दोष लगाती है और सीनेट इनकी जाँच करके इन पदाधिकारियों को दोषी ठहराती है। अन्य देशों में स्थिति इससे भिन्न है।

9. जाँच समितियों की स्थापना करना (Formation of Inquiry Committees)- अमेरिका में सीनेट को प्रशासन के गड़बड़ी के मामलों की जाँच के लिए समितियों गठित करने का अधिकार प्राप्त है। अमेरिका में अब तक कई मामलों में सीनेट ने जांच समितियां गठित की हैं और उनकी रिपोर्ट पर दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की गयी है। अतः अधिकारी सीनेट से डरते हैं; न कि प्रतिनिधि सभा से। इसलिए वे सीनेट को खुश रखने का प्रयास करते हैं। सीनेट की इस शक्ति से उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकी सीनेट प्रतिनिधि सभा के मुकाबले में अधिक शक्तिशाली सदन है।

प्रश्न - दि-सदनात्मक विधानपालिका के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।

(Give arguments in favour and against Bi-cameralism.)

उत्तर -विश्व में विधानपालिकाओं को संगठन की दृष्टि से दो वर्गों में बांटा जा सकता है-एक-सदनात्मक विधानपालिका (Uni-cameral Legislature) और द्वि-सदनात्मक (Bi-cameral Legislature) विधानपालिका। जिस देश में विधानपालिका में केवल एक सदन होता है, उसे हम एक-सदनीय विज्ञानपात्तिका कहते हैं, जैसे-चीन की विधानपालिका है और भारत के कुछ

राज्यों की विद्यानपालिकाएं। जिस देश में विधानपालिका के दो सदन होते हैं, उसे हम द्वि-सदनीय विधानपालिका कहते हैं, जैसे- ब्रिटिश संसद, अमेरिकी कांग्रेस, भारतीय संसद और स्विट्जरलैंड की फेडरल असेम्बली। विश्व के अधिकतर देशों में द्वि-सदनीय विधानपालिकाएं हैं। द्वि-सदनीय विधानपालिका अच्छी है या एक सदनीय, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। इस विषय में विद्वान दो खेमों में विभाजित हैं अर्थात् कुछ एक सदनीय विधानपालिका को श्रेष्ठ मानते हैं, तो कुछ द्वि-सदनीय विधानपालिका को। कौन-सी विधानपालिका श्रेष्ठ है, इसका निर्णय तभी किया जा सकता है, जब विद्वानों द्वारा दोनों के पक्ष व विपक्ष में दिए गए तकों पर विचार कर लिया जाए।

द्विसदनीय विधानपालिका के पक्ष में (Arguments in Favour of Bi-cameral Legislature)-जो विद्वान द्वि-सदनीय विधानपालिका के पक्ष में हैं और एक-सदनीय विधानपालिका के विरुद्ध हैं, वे निम्नलिखित तर्क देते हैं-

1. दूसरे सदन की निरंकुशता पर रोक (Checks on the Dictatorship of Other House)- विद्वानों का यह कहना है कि विधानपालिका के दो सदन होने पर एक सदन दूसरे सदन की स्वेच्छाचारिता को रोकता है, क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिए दोनों सदनों की सहमति जरूरी होती है; जैसे-अमेरिका में कानून बनाने के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों की सहमति चाहिए। इसी प्रकार फ्रांस और स्विट्जरलैंड में भी विधानपालिका के दोनों सदनों की सहमति जरूरी है। यद्यपि ब्रिटेन और भारत में प्रथम सदन को अधिक शक्तियां प्राप्त हैं, फिर भी यहाँ दूसरा सदन प्रथम सदन की मनमानी पर कुछ रोक अवश्य लगाता है। एक-दूसरे पर रोक का परिणाम यह होता है कि कोई भी सदन मनमानी नहीं कर सकता है। इसके विपरीत, यदि विधानपालिका में एक ही सदन होगा, तो उसकी स्वेच्छाचारिता पर कोई रोक नहीं लगेगी। चीन में ऐसा ही है, क्योंकि वहाँ राष्ट्रीय जन कांग्रेस का एक ही सदन है।

2. विधेयकों की पुनरावृत्ति (Revision of Bills)-विधानपालिका के दो सदन होने का एक लाभ यह भी है कि इससे विधेयकों पर फिर से विचार हो जाता है और पहले सदन जाने-अनजाने में द्वारा छोड़ दी गयी गलतियों दूर हो जाती हैं अन्यथा विधेयकों की गलती से कानून भी गलत बनने की संभावना रहती है और उसका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3. जल्द विधायन पर रोक (Check on Hasty Legislation)-द्वि-सदनीय विधानपालिका का एक लाभ यह होता है कि इससे कानून जल्दबाजी में नहीं बनते हैं। इसका लाभ यह होता है कि जनता को किसी कानून के बारे में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने का अवसर मिल जाता है और सरकार जनता की राय को जानकर ही कानून बनाती है। यदि विधानपालिका का एक ही सदन होगा, तो जनता को कानूनों पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने का अवसर नहीं मिलेगा।

4. कार्यपालिका को अधिक स्वतंत्रता (More Freedom to Executive)-द्वि-सदनीय विधानपालिका होने से कार्यपालिका को काम करने की अधिक स्वतंत्रता मिलती है, क्योंकि यदि एक सदन उसके किसी कार्य की आलोचना करता है, तो दूसरा सदन उसकी प्रशंसा भी कर सकता है। इसके विपरीत, यदि विधानपालिका में एक ही सदन होगा, तो कार्यपालिका उसी की पसंद-नापसंद का शिकार हो जाएगी।

5. कार्यों का विभाजन (Division of Works)-द्वि-सदनीय विधानपालिका के पक्ष में यह भी तर्क दिया जाता है कि इसमें कार्य-विभाजन हो जाता है और कोई भी सदन काम के बोझ से नहीं दबता है। कार्य-विभाजन के कारण प्रत्येक सदन अपना कार्य ठीक प्रकार करता है। इसके विपरीत, यदि विधानपालिका में एक ही सदन होगा, तो उसके पास काम की अधिकता होगी और वह कुशलतापूर्वक अपना कार्य नहीं कर सकेगा।

6. संघात्मक राज्यों के लिए आवश्यक (Necessary for Federal States)-संघात्मक राज्यों के लिए विधानपालिका में दूसरा सदन होना जरूरी होता है, क्योंकि द्वि-सदनीय विधानपालिका का एक सदन जनता का प्रतिनिधित्व करता है, तो दूसरा सदन संघ में शामिल राज्यों का। इसका लाभ यह होता है कि संघ में शामिल होने पर राज्य प्रसन्न रहते हैं और वे संघीय सरकार को सहयोग देते रहते हैं। किन्तु यदि ऐसा नहीं होगा, तो राज्य सन्तुष्ट नहीं होंगे और अन्ततः संघ समाप्त हो जाएगा।

7. विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधित्व (Representation to Various Groups)- जो विद्वान द्वि-सदनात्मक विधानपालिका का पक्ष लेते हैं, उनका यह कहना है कि दूसरा सदन होने पर समाज के विभिन्न वर्गों को उसमें प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है।

भारत में राष्ट्रपति 12 सदस्य मनोनीत करता है। ऐसे ही ब्रिटेन की लार्ड सभा में राजा कुछ सदस्य मनोनीत कर सकता है। सभी वर्गों को विधानपालिका में प्रतिनिधित्व मिलने से अल्पसंख्यक खुश रहते हैं। यदि विधानमण्डल में एक ही सदन होगा, तो ऐसा होना संभव नहीं होगा।

8. ऐतिहासिक अनुभव दूसरे सदन के पक्ष में (Historical Experience in Favour of Second Chamber)-विद्वानों का यह भी मानना है कि ऐतिहासिक अनुभव भी दूसरे सदन के पक्ष में हैं। संसार के अधिकतर देशों में द्वि-सदनीय विधानपालिकाएं हैं। उल्लेखनीय है कि जिन देशों में दूसरे सदन को समाप्त कर दिया था, वहां फिर से दूसरा सदन स्थापित किया गया है। अतः ऐतिहासिक अनुभव दूसरे सदन के पक्ष में है।

द्वि-सदनीय विधानपालिका के विरुद्ध में तर्क (Arguments against Bicameral Legislature)-जो विद्वान द्वि-सदनीय विधानपालिका का विरोध करते हैं, वे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं-

1. अधिक खर्चीली व्यवस्था (More Expensive System)- जो विद्वान द्वि-सदनीय विधानपालिका का विरोध करते हैं, वे यह विचार प्रकट करते हैं कि द्वि-सदनीय विधानपालिका एक-सदनीय विधानपालिका से मंहगी है, क्योंकि इसमें सरकार पर दोगुना आर्थिक बोझ पड़ता है। अतः यह व्यवस्था गरीब देशों के लिए उचित नहीं है।

2. दूसरे सदन के गठन में कठिनाई (Complications in the Formation of Second Chamber)-विद्वानों का यह भी मानना है कि दूसरे सदन के गठन में अनेक कठिनाइयां हैं। यदि अमेरिका की तरह इसे जनता द्वारा चुना जाए, तो यह पहले सदन के बराबर अधिकार माँगेगा और दूसरे इससे जनता को दोहरा प्रतिनिधित्व मिल जाएगा। यदि इसमें सदस्यों को मनोनीत किया जाएगा, तो यह व्यवस्था लोकतंत्र के विरुद्ध होगी। विश्व में दूसरे सदन के गठन के लिए कोई समान व्यवस्था नहीं अपनायी गयी है।

3. दूसरा सदन या तो व्यर्थ है या शरारती (Second Chamber in either Superflous or Mischievous)- अबे सियस ने दूसरे सदन की आलोचना करते हुए कहा है- "यदि ऊपरी सदन निम्न सदन से सहमत हो जाता है, तो वह व्यर्थ है और यदि असहमत रहता है, तो वह शरारती है।" अबे सियस के ये विचार पूर्णतः सही हैं, क्योंकि यदि उच्च सदन निम्न सदन की बात से सहमत होता है, तो इसका कोई लाभ नहीं है और यदि यह निम्न सदन से असहमत हो जाता है, तो यह इसलिए शरारती कहलाता है कि यह जनता की इच्छा की अवहेलना करता है।

4. गतिरोध की संभावना (Possibility of Deadlocks)-विद्वानों का यह भी मत है कि दो सदन होने के कारण विधानपालिका में गतिरोध उत्पन्न होने की संभावना रहती है। कई बार एक सदन दूसरे सदन को नीचा दिखाने की होड़ में लग जाता है। इससे काम में देरी होती है और सरकार की कार्य-कुशलता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5 . विधेयकों की पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं है (Revision of Bills is not Necessary)-विद्वानों का यह भी तर्क है कि विधेयकों की दोहराई आवश्यक नहीं है, क्योंकि एक सदन में भी विधेयक पारित होने के लिए कई चरणों से गुजरता है और उस पर पूर्ण रूप से विचार हो जाता है। इस दृष्टि से दूसरे सदन में समय की बर्बादी ही होती है।

6. संघ राज्यों के लिए भी दूसरा सदन आवश्यक नहीं (Second Chamber is not Necessary for Federal States)-विद्वानों का मत है कि एक सदन में भी राज्यों के प्रतिनिधित्व व्यवस्था की जा सकती है अर्थात् इसके लिए दूसरा सदन जरूरी नहीं है। इससे राज्य पर आर्थिक बोझ बढ़ता है। दूसरे सदन में भी प्रतिनिधि अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व न करके अपने दल का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि सदस्यों को दलीय निर्णय को मानना पड़ता है अन्यथा उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाती है।

7. रूढ़िवादिता का गढ़ (House of Conservatism)-प्रायः यह देखा जाता है कि उच्च सदर प्रगतिशील नीतियों का विरोध करता है। ब्रिटेन की लार्ड्स सभा इसका उदाहरण है, क्योंकि इसमें रूढ़िवादी विचारों के सदस्य होते हैं।

8. उत्तरदायित्व का अभाव (Lack of Responsibility)-द्वि-सदनात्मक विधानपालिका में उत्तरदायित का अभाव रहता है,

क्योंकि किसी गलती के लिए दोनों सदन एक-दूसरे पर आरोप लगा सकते हैं। इससे सदनों में अनुत्तरदायित्व की भावना बढ़ती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दोनों प्रकार की विधानपालिकाओं के अपने-अपने गुण-दोष हैं, फिर भी कुल मिलाकर द्वि-सदनीय विधानपालिका एक-सदनीय विधानपालिका से श्रेष्ठ मानी जाती है।

प्रश्न — कार्यपालिका से आप क्या समझते हैं? कार्यपालिका के विभिन्न प्रकारों और कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(What do you understand by Executive? Describe the kinds and functions of Executive in brief.)

उत्तर- कार्यपालिका सरकार का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। वैसे तो प्राचीनकाल में भी यह सरकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग था, किन्तु आधुनिक युग में अनेक कारणों से इसका महत्त्व बढ़ गया है। आज कार्यपालिका केवल कानून लागू करने और प्रशासन को चलाने का कार्य करती है, बल्कि यह कानून-निर्माण, नीति-निर्धारण, विदेशी मामलों का संचालन, वित्त-सम्बन्धी एवं न्यायिक कार्य भी करती है।

कार्यपालिका शब्द का प्रयोग दो अथों में किया जाता है - संकुचित अर्थ में और व्यापक अर्थ में।
संकुचित अर्थ के अनुसार — कार्यपालिका में राज्य का अध्यक्ष और उसका मत्रिमण्डल शामिल होता है, जब कि
व्यापक अर्थ के अनुसार — कार्यपालिका में राज्य का अध्यक्ष, मंत्रिमण्डल और वे समस्त अधिकारी व कर्मचारी सम्मिलित होते हैं, जो नीति-निर्धारण करने और प्रशासन चलाने का कार्य करते हैं। राजनीति विज्ञान में कार्यपालिका को संकुचित अर्थ ही लिया जाता है अर्थात् कार्यपालिका में राज्य का अध्यक्ष और उसका मंत्रिमण्डल शामिल होते हैं।

कार्यपालिका की निम्नलिखित **परिभाषाओं** से भी इसका अर्थ समझा जा सकता है-

1. पालोम्बारा के अनुसार, "कार्यपालिका से आशय मुख्य कार्यपालक, विभागों के अध्यक्ष तथा सरकारी सोपान में उच्चतम स्तर के सार्वजनिक प्रशासकों से है। इसमें वे व्यक्ति, लोक कर्मचारी और अन्य लोग, जो मुख्य कार्यपालक की सहायता के लिए भर्ती किए जाते हैं, सम्मिलित होते हैं।"

2. गैटल के अनुसार, "व्यापक रूप में कार्यपालिका में वैधानिक एवं न्यायिक अधिकारियों को छोड़कर सभी कर्मचारियों को शामिल किया जाता है। इसमें सरकार की वे सभी संस्थाएं शामिल हैं, जो कानूर द्वारा प्रकट की गयी राज्य की इच्छा को लागू करने से सम्बन्ध रखती हैं।"

कार्यपालिका की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कार्यपालिका सरकार का वह अंग है, जो राज्य के कानूनों को लागू करता है। इस दृष्टि में कार्यपालिका में केवल राज्य का अध्यक्ष और उसका मंत्रिमण्डल शामिल होते हैं।

कार्यपालिका के प्रकार (Kinds of Executive) - संगठन की दृष्टि से कार्यपालिका अनेक प्रकार की होती है। आमतौर पर आज विश्व में इसके निम्नलिखित रूप देखने को मिलते हैं-

1. पैतृक तथा निर्वाचित कार्यपालिका (Hereditary and Elected Executive)-जिस देश में राजतंत्र प्रणाली होती है और व्यक्ति अपने पैतृक अधिकार से राजा बनता है, ऐसी कार्यपालिका को हम पैतृक कार्यपालिका कहते हैं। उदाहरण के लिए ब्रिटेन, जापान व सऊदी अरब में पैतृक कार्यपालिका मौजूद है। किन्तु जिन देशों में कार्यपालिका का चुनाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है, उन देशों की कार्यपालिकाएं निर्वाचित कार्यपालिकाएं होती हैं। उदाहरण के लिए भारत, अमेरिका एवं स्विट्जरलैंड में निर्वाचित कार्यपालिकाएं मौजूद हैं।

2. एकल तथा बहुल कार्यपालिका (Single and Plural Executive)- जिस देश में एक ही व्यक्ति मुख्य कार्यपालक होता है, उस देश की कार्यपालिका एकल कार्यपालिका कहलाती है। उदाहरण के लिए अमेरिका में एकल कार्यपालिका है। इसके विपरीत, जहाँ कार्यपालिका शक्तियां कई सदस्यों में समान रूप से विभाजित हो, वहाँ मौजूद कार्यपालिका को बहुल

कार्यपालिका कहा जाता है। स्विट्जरलैंड में बहुल कार्यपालिका है, क्योंकि यहाँ कार्यपालिका की शक्तियां सात सदस्यों में समान रूप से विभाजित हैं।

3. संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक कार्यपालिका (Parliamentary and Presidential Executive)-जहाँ मुख्य कार्यपालिका (राष्ट्रपति) नाममात्र का अध्यक्ष होता है और वास्तविक अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है; जहाँ विधानपालिका एवं कार्यपालिका में गहरा सम्बन्ध होता है और जहाँ कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी होती है, वहाँ विद्यमान कार्यपालिका को संसदात्मक कार्यपालिका कहा जाता है। उदाहरण के लिए भारत, ब्रिटेन तथा जापान में संसदात्मक कार्यपालिकाएं हैं। दूसरी ओर जिन देशों में मुख्य कार्यपालिका वास्तविक अध्यक्ष होती है; विधानपालिका एवं कार्यपालिका में कोई सम्बन्ध नहीं होता है और जहाँ शक्तियों का पृथक्करण होता है, वहाँ पर अध्यक्षात्मक कार्यपालिका पायी जाती है। उदाहरण के लिए अमेरिका व फ्रांस में अध्यक्षात्मक कार्यपालिकाएं हैं।

4. वास्तविक तथा नाममात्र की कार्यपालिका (Real and Nominal Executive)- जिस देश में कार्यपालिका संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग स्वयं करती हो, उस देश की कार्यपालिका वास्तविक कार्यपालिका कहलाती है। अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालिका का मुख्य उदाहरण है। जिस देश में मुख्य कार्यपालिका की शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री व उसका मन्त्रिमण्डल करता हो, उसकी कार्यपालिका को नाममात्र की कार्यपालिका कहा जाता है। उदाहरण के लिए भारत का राष्ट्रपति तथा जापान और ब्रिटेन के राजा नाममात्र की कार्यपालिका हैं।

5. राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका (Political and Permanent Executive)-लोकतांत्रिक देशों में कार्यपालिका के दो रूप होते हैं-राजनीतिक कार्यपालिका एवं स्थायी कार्यपालिका। मंत्रिमण्डल राजनीतिक कार्यपालिका का उदाहरण है, जब कि वे अधिकारी, जो स्थायी रूप से प्रशासन का कार्य करते हैं, स्थायी कार्यपालिका कहलाते हैं। मंत्री अपने विभाग का राजनीतिक कार्यपालक होता है, जब कि सचिव विभाग का स्थायी कार्यपालक होता है।

6. तानाशाह तथा संवैधानिक कार्यपालिका (Dictatorial and Constitutional Executive)-जिस देश में तानाशाही शासन होता है, उसकी कार्यपालिका तानाशाह कार्यपालिका कहलाती है। उदाहरण के लिए इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर तानाशाह रहे हैं। जहाँ पर लोकतान्त्रिक शासन होता है, वहाँ संवैधानिक कार्यपालिका होती है। भारत, अमेरिका एवं फ्रांस संवैधानिक कार्यपालिका का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

7. मनोनीत कार्यपालिका (Nominated Executive)- जहाँ कार्यपालिका को मनोनीत किया जाता है, वहाँ पर मनोनीत कार्यपालिका होती है; जैसे-भारत के राज्यों में राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति होता है। इसी तरह आस्ट्रेलिया में भी मनोनीत कार्यपालिकाएं हैं।

8. निश्चित तथा अनिश्चित (Fixed and Un-fixed)- जिस कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होता है; यह निश्चित कार्यपालिका होती है; जैसे-अमेरिका में राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित है। इसके विपरीत, जहाँ कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है अर्थात् उसे कभी भी पद से हटाया जा सकता है, यह अनिश्चित कार्यपालिका कहलाती है। भारत में अनिश्चित कार्यपालिका ही है, क्योंकि लोक सभा इसके विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके इसको कभी भी अपदस्थ कर सकती है।

कार्यपालिका के कार्य (Functions of Executive)-आधुनिक समय में कार्यपालिका निम्नलिखित कार्य करती है-

1. नीतियों का निर्धारण (Formulation of Policies) - कार्यपालिका का मुख्य कार्य नीतियों का निर्माण करना होता है। राज्य की नीतियों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है-गृह नीति (Domestic Policy) एवं विदेश नीति (Foreign Policy)। गृह-नीति का सम्बन्ध राज्य के आन्तरिक मामले से होता है, जब कि विदेश नीति का सम्बन्ध विदेशी मामलों से होता है। ये दोनों नीतियां मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित की जाती हैं और इन्हें विधानपालिका द्वारा स्वीकृत करवाया जाता है। इन नीतियों को विधानपालिका की स्वीकृति मिलने के पश्चात् कार्यपालिका द्वारा ही क्रियान्वित किया जाता है।

2. कानूनों का क्रियान्वयन (Enforcement of Laws) - कार्यपालिका का एक अन्य कार्य विधानपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों को लागू करना होता है। कार्यपालिका इस कार्य के लिए अनेक अधिकारियों व कर्मचारिखें का सहयोग लेती है। पुलिस व सेना भी इस कार्य में भूमिका निभाती हैं। कानूनों को ठीक प्रकार लागू करते हुए कार्यपालिका समाज में शांति और व्यवस्था की स्थापना करती है। कार्यपालिका जनता का विश्वास तभी प्राप्त कर सकती है, जब देश में कानून और व्यवस्था लागू हो और अमन-चैन हो।

3. विदेशी मामलों का संचालन (Conduct of Foreign Affairs)- देश में विदेशी मामलों का संचालन कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। देश की विदेश नीति के अन्तर्गत इन मामलों का संचालन होता है। राज्य का अध्यक्ष विदेशों में देश का प्रतिनिधित्व करता है; विदेशों में अपने देश के राजदूतों की नियुक्ति करता है और विदेशों के राजदूतों के प्रमाण-पत्र लेता है। मंत्रिमण्डल अन्य देशों के साथ सन्धि व समझौते करता है। मंत्रिमण्डल ही अन्य देशों में व्यापारिक व अन्य प्रतिनिधिमण्डल भेजता है। मंत्रिमण्डल ही यह निर्णय करता है कि देश के साथ कैसे सम्बन्ध रखने हैं।

4. सैनिक कार्य (Military Functions)- कार्यपालिका को कई सैनिक कार्य भी करने पड़ते हैं। राब का अध्यक्ष देश की सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है। वह सेना के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है; युद्ध का निर्णय करता है तथा युद्ध की समाप्ति का निर्णय लेता है। कार्यपालिका देश में मार्शल लॉ त करने का भी निर्णय ले सकती है।

5. वित्तीय कार्य (Financial Functions)-कार्यपालिका देश का बजट तैयार करती है और उसे विधानपालिका से पारित करवाती है। बजट पारित होने पर इसे कार्यपालिका द्वारा ही लागू किया जाता है। वित्त मंत्री मंत्रिमण्डल के अन्य सहयोगियों से विचार-विमर्श करके देश का बजट तैयार करवाता है और राज्य के अध्यक्ष के कहने पर उसे विधानपालिका में पेश करता है। प्रत्येक विभाग को आवंटित धनराशि सम्बन्धित मंत्री की देखरेख में खर्च की जाती है।

6. संकटकालीन कार्य (Emergency Functions)- आमतौर पर प्रत्येक देश के संविधान में संकटकालीन स्थिति से निबटने के लिए कार्यपालिका को विशेष शक्तियाँ देने की व्यवस्था की जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 352, 356 व 360 में इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है। आपातकाल के समय कार्यपालिका नागरिकों के मौलिक अधिकारों को निलम्बित (Suspend) कर सकती है।

7. वैधानिक कार्य (Legislative Functions)-वैसे तो कानून बनाना विधानपालिका का कार्य होता है, किन्तु प्रदत्त विधायन (Delegated Legislation) के अन्तर्गत कुछ कानून कार्यपालिका के द्वारा बनाए जाते हैं। विधानपालिका में प्रस्तुत अधिकतर विधेयक मंत्रियों द्वारा ही तैयार करवाए जाते हैं। बिना मंत्रिमण्डल के सहयोग के कोई विधेयक विधानपालिका में पारित नहीं हो सकता। आजकल काम की अधिकता के कारण विधानपालिका मोटे तौर पर ही कानून बनाती है और उस कानून के सम्बन्ध में नियम-उपनियम बनाने का अधिकार कार्यपालिका को सौंप देती है। कार्यपालिका अध्यादेश के माध्यम से भी कानून बना सकती है।

8. प्रशासनिक कार्य (Administrative Functions)- देश के प्रशासन को चलाने का दायित्व कार्यपालिका का होता है। कार्य की सुविधा के लिए सम्पूर्ण प्रशासन विभिन्न विभागों में विभाजित होता है और प्रत्येक विभाग एक मंत्री के अधीन होता है। मंत्री अपने विभाग का प्रशासन चलाने के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होता है। वस्तुतः समस्त देश का प्रशासन मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीतियों के अन्तर्गत ही चलाया जाता है।

9. न्यायिक कार्य (Judicial Functions)-वैसे तो न्याय करने का कार्य न्यायपालिका का होता है, किन्तु कार्यपालिका भी कुछ न्यायिक कार्य करती है। कई देशों में मुख्य कार्यपालक को न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। भारत और अमेरिका के राष्ट्रपति को अपने-अपने देश के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार है। इन्हें अपराधियों की सजा माफी का भी अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कई देशों में प्रशासकीय न्याय का प्रावधान है। इस प्रावधान के अन्तर्गत सम्बन्धित विभाग का मंत्री भी कुछ न्यायिक कार्य करता है।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त आधुनिक युग में कार्यपालिका कई अन्य कार्य भी करती है, जिन्हें राजनीतिक कार्यों की संज्ञा दी

जाती है; जैसे-

प्रथम, आधुनिक युग में लोगों की शिकायतें सुनना और उन्हें दूर करना कार्यपालिका का एक अनिवार्य कार्य बन गया है, क्योंकि आज विश्व के अनेक देशों में लोकतांत्रिक सरकारें कार्यरत हैं और शासन जन-प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। अतः मंत्री लोगों की शिकायतों को सुनते हैं और उन्हें हल करने का प्रयास करते हैं। दूसरे, कार्यपालिका अनेक प्रशासनिक निर्णय लेने का कार्य करती है। सरकार के समक्ष मांगें आती रहती हैं और उन मांगों के विषय में सरकार को निर्णय लेने पड़ते हैं। तीसरे, कार्यपालिका, सरकार, जनता, राजनीतिक दलों व दबाव समूहों को जोड़ने का कार्य करती है। चौथे, कार्यपालिका देश को नेतृत्व प्रदान करने का कार्य भी करती है। कार्यपालिका अपनी योग्यता व कार्यों के आधार पर देश की जनता का नेतृत्व करती है। पाँचवें, कार्यपालिका विचार-विमर्श का यह कार्य भी करती है, जो पहले विधानपालिका का कार्य होता था। देश की प्रमुख समस्याओं पर विचार-विमर्श करना और उनका हल तलाश करना कार्यपालिका का एक महत्त्वपूर्ण कार्य बन चुका है।

प्रश्न - वर्तमान समय में कार्यपालिका के बढ़ते हुए महत्व के कारणों पर प्रकाश डालिए। क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि ऐसा व्यस्थापिका की कीमत पर नहीं हुआ है? (Account for the increasing importance of Executive in recent times. Do you agree with the view that it has not happened at the cost of Legislature?)

अथवा

"कार्यपालिका की शक्तियां दिन-प्रतिदिन बढ़ रही हैं।" इस कथन के सन्दर्भ में उन कारकों की विवेचना कीजिए जो कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं।

अथवा

उन विभिन्न कारकों की विश्लेषणात्मक परीक्षा कीजिए, जो कार्यकारी शक्तियों को उत्थान की तरफ ले गए।

उत्तर- चाहे शासन का रूप संसदात्मक हो या फिर अध्यक्षात्मक, यह एक वास्तविकता है कि कार्यपालिका की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आज सर्वत्र मुख्य कार्यपालक (Chief Executive) इतनी शक्तियों का प्रयोग कर रहे हैं कि सम्पूर्ण शासन-तन्त्र इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता नजर आता है। यही कारण है कि चाहे अध्यक्षात्मक शासन वाले राज्य अमेरिका और फ्रांस हों या फिर संसदात्मक शासन वाले राज्य ब्रिटेन और भारत, सभी में कार्यपालिका की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हुई है।

कुछ कारक हैं ,जो **कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। ये कारक हैं-**

1. दलीय प्रणाली (Party System)-मोटे तौर पर हमें तीन प्रकार की दलीय प्रणालियाँ देखने को मिलती हैं-एक-दलीय प्रणाली, द्वि-दलीय प्रणाली और बहु-दलीय प्रणाली। जिन देशों में एक-दलीय प्रणाली होती है, वहाँ कार्यपालिका, तानाशाही की सीमा तक शक्तिशाली हो जाती है, क्योंकि वहीं इसके निर्णयों तथा नीतियों का विरोध करने वाला कोई अन्य दल नहीं होता है। साथ ही कठोर दलीय अनुशासन के कारण दल के भीतर भी किसी तरह के विरोध की गुंजाइश नहीं रहती है। भूतपूर्व सोवियत संघ और जनवादी चीन ऐसी ही दलीय पद्धति वाले राज्य हैं। जहाँ द्वि-दलीय प्रणाली होती हैं और साथ ही संसदात्मक प्रणाली भी, वहाँ उसी दल की सरकार होती है, जिसका विधानपालिका के निचले सदन में बहुमत प्राप्त होता है। यहां कार्यपालिका मनमर्जी से शासन का संचालन कर सकती है, क्योंकि अल्पमत में रहने वाला विपक्षी दल उसके रास्ते में कारगर बाघा नहीं बन सकता है। ब्रिटेन में श्रमिक दल या अनुदार दल, जिसका भी कामन सभा में बहुमत होता है, उसी को सरकार बनाने का अवसर दिया जाता है और वह दलीय समर्थन के आधार पर बिना किसी रोक-टोक के अपनी नीतियों का निर्माण और क्रियान्वयन करता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले राज्य अमेरिका में भी द्वि-दलीय पद्धति है। यहाँ पर रिपब्लिकन पार्टी या डेमोक्रेटिक पार्टी, जिसका भी राष्ट्रपति होता है, वह राष्ट्रपति को समर्थन देता है। यहाँ अपवाद स्वरूप ही ऐसा हो सकता है कि राष्ट्रपति वाले दल का कांग्रेस के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में बहुमत न हो। सामान्य रूप से यदि एक सदन में नहीं, तो दूसरे सदन में राष्ट्रपति के दल का बहुमत अवश्य होता ही है। बहु-दलीय प्रणाली वाले राज्य में कार्यपालिका की स्थिति इतनी सुदृढ़ तो नहीं होती, जितनी कि एक-दलीय या द्वि-दलीय पद्धति बाले राज्यों में। यहाँ प्रायः मिली-जुली सरकारें बनती हैं। जोड़-

तोड़ की राजनीति के सहारे यहाँ भी कार्यपालिका विधानपालिका से अपनी नीतियों का समर्थन करा लेती है।

2. दलीय अनुशासन (Party Discipline)- आधुनिक समय में राजनीतिक दल दलीय अनुशासन पर बल देने लगे हैं। कठोर दलीय अनुशासन के कारण कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि हुई है। 19वीं शताब्दी में विधानपालिका के सदस्य दल के सचेतक (Whip) के इतने अधीन नहीं होते थे, जितने कि ये आज हैं। आज राजनीतिक दलों का अपने सदस्यों पर पूर्ण नियन्त्रण है, जिससे इनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी है। जो सदस्य दल के निर्णयों का पालन नहीं करता, उसे दल से बाहर कर दिया जाता है और दल से बाहर हो जाने पर उसकी राजनीतिक मृत्यु हो जाती है। कार्यपालिका का अध्यक्ष राजनीतिक दल का प्रमुख नेता होता है। इतना ही नहीं, मन्त्रिमण्डल के सदस्य भी अपने दल के प्रमुख नेता होते हैं, जब कि विधानपालिका के सदस्य दल के निम्न स्तरीय नेता होते हैं। यह बात लोकतान्त्रिक व साम्यवादी दोनों प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं पर लागू होती है। ब्रिटेन, फ्रांस, भारत, पाकिस्तान आदि देशों में प्रधानमंत्री और उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य दल के प्रमुख नेता होते हैं। इसी तरह अमेरिका और फ्रांस आदि देशों में राष्ट्रपति अपने-अपने दल के सर्वोच्च नेता होते हैं। साम्यवादी सोवियत संघ में लेनिन, स्टालिन और खुश्चेव तथा चीन में माओ व चाऊ-एनलाई अपने-अपने साम्यवादी दल के शीर्षस्थ नेता रहे हैं। स्पष्ट है कि कार्यपालिका, जिसमें दल के प्रमुख नेता शामिल होते हैं, की नीतियों का विरोध करने का साहस विधानपालिका के सदस्य नहीं जुटा सकते हैं।

3. राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency)- राष्ट्रीय आपातकाल ने भी कार्यपालिका की शक्तियों का बहुत विस्तार किया है। राष्ट्रीय आपातकाल का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि शक्ति थोड़े ही व्यक्तियों के हाथों में रहे। आपातकाल के दौरान जनता के अनेक अधिकार निलम्बित कर दिए जाते हैं, जिससे कार्यपालिका की शक्तियां बढ़ जाती हैं। यद्यपि आपातकाल समाप्त होने पर कार्यपालिका की विशिष्ट शक्तियां भी समाप्त हो जाती हैं, तब भी कुछ-न-कुछ शक्तियों का प्रयोग वह करती ही रहती है। भारत में 1962 के भारत-चीन युद्ध, 1965 व 1971 के भारत-पाक युद्धों के समय कार्यपालिका (सरकार) को असीमित शक्तियों के प्रयोग का अधिकार मिल गया था और सभी दलों, समूहों व संगठनों ने सरकार को भरपूर समर्थन दिया था। भारत में जून, 1975 में इन्दिरा गाँधी सरकार ने जिस राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा करायी थी, उसके दौरान देश में सरकार की तानाशाही स्थापित हो गयी थी।

4. प्रशासकीय न्याय (Administrative Adjudication) सामाजिक जीवन की जटिलता को देखते हुए आज कार्यपालिका को अनेक न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक कार्य सौंप दिए गए हैं। मन्त्रियों को अपने-अपने विभागों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों पर निर्णय देने का अधिकार दे दिया गया है। उदाहरण के लिए 1913 के रोड़ ट्रैफिक अधिनियम के अन्तर्गत यदि किसी व्यक्ति को बस आदि चलाने का लाइसेंस न दिया जाए, तो वह परिवहन मन्त्री से इसके लिए अपील कर सकता है। इससे पूर्व ऐसे मुकद्दमों की सुनवाई न्यायालयों द्वारा ही की जाती है। उल्लेखनीय है कि मन्त्री को ऐसे मुकदमों की सुनवाई करते समय न्यायालय के नियमों का पालन नहीं करना पड़ता, बल्कि वह अपने ही नियमों के तहत निर्णय देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रशासकीय न्याय की अवधारणा ने कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि करने में अहम् भूमिका निभायी है। प्रशासकीय न्याय का प्रारम्भ फ्रांस में हुआ। भारत ने भी फ्रांस का अनुसरण किया। यहाँ अनेक प्रशासकीय अधिकारी न्यायिक कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए यहां आयकर आयुक्त, श्रम आयुक्त व रजिस्ट्रार सहकारी समीतियां अर्ध-न्यायिक कार्यों का भी निष्पादन करते हैं।

5. राजनीतिक समजातीयता एवं सामूहिक उत्तरदायित्व (Political Homogeneity and Collective Responsibility) - कार्यपालिका के सदस्य प्रायः एक ही दल के सदस्य होते हैं, विशेष रूप से वहाँ, जहाँ एक-दलीय व द्वि-दलीय पद्धतियों मौजूद हैं। स्वाभाविक है कि कार्यपालिका के जो भी सदस्य होते हैं, उनमें राजनीतिक समजातीयता का गुण पाया जाता है, जिसके कारण वे एक-दूसरे के बहुत समीप होते हैं। अन्य शब्दों में, मन्त्रिमण्डल के सदस्य किसी एक दल से सम्बन्ध रखने के कारण एक समान राजनीतिक विचारधारा को मानने वाले होते हैं, जिसके कारण उनमें एकता (Solidarity) पायी जाती है। जहाँ बहु-दलीय पद्धति मौजूद है, वहाँ भी कार्यपालिका के सदस्यों में थोड़ी-बहुत एकता अवश्य ही बनी रहती है, क्योंकि यहाँ प्रायः वे ही दल मिलकर सरकार का गठन करते हैं, जिनके मध्य वैचारिक दृष्टि से कुछ नजदीकियां होती हैं। सत्ता में भागीदारी भी इन दलों में थोड़ी-बहुत एकता (Unity) बनाए रखती हैं। कार्यपालिका के सदस्यों में यह एकता भी इसको सुदृढ़ता प्रदान करती है।

संसदात्मक शासन-प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता होती है-सामूहिक उत्तरदायित्व, जिसका अर्थ होता है-मन्त्रियों का सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होना। अन्य शब्दों में, किसी एक विभाग की सफलता-असफलता के लिए सम्बन्धित मन्त्री को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है बल्टि इसके लिए सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी होता है।

6. विधानपालिका को भंग करने की शक्ति (Power of Dissolution of Legislature)- कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि के लिए एक अन्य तत्त्व भी जिम्मेदार है और वह तत्व है-कार्यपालिका के विधानपालिका को भंग करने की शक्ति। जहाँ पर संसदात्मक शासन प्रणाली होती है, वहाँ पर मन्त्रिमण्डल समय से पूर्व विधानपालिका के निम्न सदन, जो अधिकतर शक्तिशाली सदन होता है, को राजाध्यक्ष से भंग करा सकता है। अपनी इस शक्ति के द्वारा वह न केवल अपने दल के सदस्यों पर, बल्कि विरोधी दलों के सदस्यों पर भी अपना नियन्त्रण बनाए रखता है। यदि ब्रिटेन में कॉमन सभा (संसद का निचला सदन) मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित कर देता है, तो ऐसी स्थिति में मन्त्रिमण्डल के सामने दो ही विकल्प होते हैं-या तो वह अपना त्यागपत्र दे या सम्राट को परामर्श देकर कॉमन सभा को भंग करा दे।

7. प्रदत्त विधायन (Delegated Legislation) - उन्नीसवीं शताब्दी तक राज्य 'पुलिस राज्य' के रूप में कार्य करते थे, किन्तु बीसवीं शताब्दी में अनेक कारणों से राज्य ने लोक कल्याणकारी राज्य का रूप धारण कर लिया। इसके परिणामस्वरूप राज्य को अनेक जन कल्याणकारी कार्य करने होते हैं। इसके लिए संसद को अनेक प्रकार के कानून बनाने पड़ते हैं। कानूनों का विस्तार भी अब पहले की अपेक्षा बढ़ गया है। अब संसद के पास इतना समय नहीं होता कि वह विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद विधेयकों को पारित कर सके। अत संसद कानूनों की रूपरेखा तय कर देती है और ऐसे काननों के अन्तर्गत नियम, उप-नियम एवं आदेश जारी करने की शक्ति कार्यपालिका को दे देती है और कार्यपालिका नियम, उपनियम बनाते समय कानूनों को काफी हद तक अपनी इच्छानुसार तोड़-मरोड़ देती है। इससे कार्यपालिका की शक्तियों में काफी वृद्धि हुई है।

8. कार्यपालिका अधिकारियों के पदों में वृद्धि (Increase in the Posts of Executive Officials)-आधुनिक समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ कार्यपालिका के कार्यों में अपार वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक अधिकारियों के पदों में भी वृद्धि हुई है। आज सभी राज्यों में नई-नई संस्थाएं, सलाहकार व सहायकमण्डल स्थापित किए जाने लगे हैं, जिसके कारण राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के कार्यालय से सम्बन्धित समितियों, मण्डलों व विशेषज्ञों का जाल-सा बिछ गया है। इससे राजनीतिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर मुख्य कार्यपालक ही कार्यों का संयोजक, नियन्त्रक व निर्देशक बन गया है। वर्तमान समय में कार्यपालिका को सैकड़ों नियुक्तियां करनी पड़ती हैं। ब्रिटेन और भारत जहां संसदात्मक शासन व्यवस्था है, वहाँ इन व्यक्तियों के लिए विधानपालिका की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन अमेरिका, जहाँ अध्यक्षात्मक शासन-व्यवस्था लागू है, में राष्ट्रपति सैकड़ों पदों पर नियुक्ति करता है, जिसके लिए उसे सीनेट (विधानपालिका का उच्च सदन), जो विश्व में सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च सदन है, की स्वीकृति लेनी पड़ती है। राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली नियुक्तियां दो प्रकार की होती हैं। प्रथम, वे नियुक्तियां, जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण राष्ट्र से होता है जैसे-राजदूत, मन्त्रिगण व उच्च सैनिक अधिकारीगण, जिन्हें सीनेट बिना रोक-टोक के अपनी स्वीकृति दे देती है। द्वितीय, वे नियुक्तियाँ, जो राज्यों में की जाती हैं। इस प्रकार की नियुक्तियों को सीनेट काफी सोच-विचारकर अपनी स्वीकृति देती है। लेकिन आधुनिक समय में सीनेट द्वारा इन नियुक्तियों के अनुमोदन के विषय में सीनेट का शिष्टाचार (Senatorial Courtesy) नामक एक परम्परा पड़ गयी है। इसके अनुसार जब अमेरिकी राष्ट्रपति किसी राज्य में कोई नियुक्ति करता है, तो ऐसा करने से पूर्व वह उस राज्य के दोनों सीनेटरों से परामर्श कर लेता है। यदि ये सीनेटर राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्ति से सहमत होते हैं, तो सीनेट उस नियुक्ति का अनुमोदन कर देती है। स्पष्ट है कि नियुक्ति-सम्बन्धी इस परम्परा ने भी अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि की है।

9. संचार के साधनों में वृद्धि (Increasing Means of Communication)- आधुनिक समय में सम्पूर्ण विश्व में संचार के साधनों में बहुत वृद्धि हुई है। संचार के साधनों के विकास के कारण कार्यपालिका का जनता के साथ सीधा सम्पर्क हो गया है। संचार के आधुनिक साधनों के माध्यम से कार्यपालिका जनता के प्रति सीधे उत्तरदायी हो गयी है। यही कारण है कि आज सभी देशों में राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री रेडियो अथवा दूरदर्शन द्वारा जनता को बार-बार सम्बोधित करने लगे हैं। जिन देशों में संचार के साधनों पर सरकार का नियन्त्रण होता है, वहाँ कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों का जमकर प्रचार करती है, किन्तु जिन देशों में संचार के साधनों पर सरकार का नियन्त्रण नहीं होता है, वहाँ भी प्रायः सरकार इनका प्रयोग अपने पक्ष में करने में सफल रहती है। संचार के साधनों के द्वारा कार्यपालिका और जनता के मध्य सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाने के कारण

कार्यपालिका शक्ति का एक प्रमुख केन्द्र बन गयी है।

उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सभी शासन-प्रणालियों में कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि हुई है और आज कार्यपालिका शक्ति का एक प्रमुख केन्द्र बन गयी है।

प्र० ब्रिटिश राजा की शक्तियों, कार्यों व स्थिति का वर्णन कीजिए।

(Describe the powers, functions and position of British King.)

अथवा

"ब्रिटेन के राजा को सलाह देने, प्रोत्साहन देने और चेतावनी देने का अधिकार है।" इस बाक्य के संदर्भ में ब्रिटेन के राजा की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

अथवा

ब्रिटिश राजा के कार्यों का संसद तथा मंत्रिमण्डल के सन्दर्भ में समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।

(Examine and evaluate the functions of the British King with reference to the Parliament and Cabinet.)

उत्तर -ब्रिटिश शासन-प्रणाली में राजा का सर्वोच्च पद है। एक समय था जब यह पद शक्ति और सम्मान का पद होता था, किन्तु जब से राजा की शक्तियां सीमित की गयी और संसद की शक्तियों में वृद्धि की गयी, तब से यह पद शक्ति का पद तो नहीं रहा, किन्तु सम्मान का पद होकर रह गया। ब्रिटेन में प्रारम्भ से ही राजतंत्र का प्रचलन रहा है। ब्रिटिश लोग राजा को नाममात्र का शासक बना देने के बाद भी राजतंत्र को समाप्त करना नहीं चाहते हैं। वे ब्रिटिश शासन व्यवस्था में राजा के पद को बहुत उपयोगी मानते हैं। ब्रिटेन में राजा का चयन पैतृक अधिकार के अनुसार होता है अर्थात् राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके सबसे बड़े बेटे और बेटों के न होने पर बेटी की ताजपोशी कर दी जाती है और वह जीवन पर्यन्त अपने पद पर बना रहता है।

ब्रिटिश राजा की शक्तियां व कार्य (Powers and Functions of British King)-ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में राजा अथवा रानी की शक्तियों व कार्यों को निम्नलिखित वगों में विभक्त किया जा सकता है-

1. कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers)- ब्रिटिश सम्राट को निम्नलिखित कार्यपालिका शक्तियां प्राप्त हैं-
(i) वह प्रधानमंत्री व अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है और उन्हें उनके पद से हटा सकता है।
(ii) सम्पूर्ण देश का प्रशासन उसके नाम पर चलाया जाता है, क्योंकि वह देश का मुख्य कार्यपालक है।
(iii) वह देश की तीनों सेनाओं का प्रमुख होता है।
(iv) वह विदेशों में ब्रिटेन के राजदूतों की नियुक्ति करता है और दूसरे देशों के राजदूतों के नियुक्ति प्रमाण-पत्र ग्रहण करता है।
(v) वह न्यायाधीशों व अन्य उच्चाधिकारियों की नियुक्ति करता है।
(vi) वह विदेशी सम्बन्धों का संचालन करता है और विदेशों से सन्धि व समझौते करता है।
(vii) वह युद्ध और शांति की घोषणा करता है।
(viii) वह उपनिवेशों के राज्याध्यक्षों की नियुक्ति करता है। साथ ही, वह उपनिवेशों का भी अध्यक्ष होता है।

2. वैधानिक शक्तियां (Legislative Powers)-ब्रिटिश सम्राट को निम्नलिखित वैधानिक शक्तियां प्राप्त हैं-
(i) वह ब्रिटिश संसद का एक अंग होता है।
(ii) वह ब्रिटिश संसद के अधिवेशन बुलाता है।
(iii) वह संसद द्वारा पारित विधेयकों को स्वीकृति प्रदान करता है।
(iv) वह लार्ड सभा में बहुत-से सदस्यों को मनोनीत करता है।

(v) वह Orders-in-Council जारी करने का अधिकार रखता है, जिसका कानून जैसा महत्त्व और प्रभाव होता है।
(vi) उसे संसद द्वारा पारित विधेयकों पर निषेधाधिकार (Veto Power) भी प्राप्त होता है, किन्तु 1707 के उपरान्त किसी सम्राट ने इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया है।
(vii) वह आम चुनाव के पश्चात् संसद में उद्घाटन भाषण देता है, जिसे 'Speech from the Throne' कहा जाता है।
(viii) वह प्रधानमंत्री की सिफारिश पर कॉमन सभा (House of Commons) को भंग कर सकता है।

3. न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)-ब्रिटेन में राजा को अनेक न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं। वह न्याय का प्रमुख स्रोत (Fountain of Justice) होता है। ब्रिटेन में न्याय उसके नाम पर ही किया जाता है। वह न्यायाधीशों, काउन्टियों और बोरों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है, किन्तु वह इन्हें पद से नहीं हटा सकता। जो मामले अपील के रूप में प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के पास आते हैं, राजा समिति के सुझावों पर उन पर अपना निर्णय सुनाता है। उसे क्षमादान का अधिकार भी प्राप्त है।

4. धार्मिक शक्तियां (Religious Powers) - ब्रिटेन में राजा चर्च का प्रमुख होता है। वह चर्च के धर्माधिकारियों की नियुक्ति करता है। चर्च की राष्ट्रीय सभा द्वारा लिए गए सभी निर्णयों पर उसकी स्वीकृति ली जाती है। धार्मिक मामलों में अन्तिम अपील भी सम्राट को ही की जाती है। उसे देश में धर्म का संरक्षक माना जाता है।

5. अन्य शक्तियां (Other Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त, ब्रिटिश सम्राट को कुछ अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं; जैसे वह सम्मान का स्रोत (Fountain of Honour) होता है और उसी के द्वारा सभी प्रकार के सम्मान नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं। उसी के द्वारा सभी उपाधियाँ भी नागरिकों को प्रदान की जाती हैं। वह विदेशों में ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में सम्राट को व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं, किन्तु वह इन शक्तियों का प्रयोग स्वयं नहीं करता है। वह इन शक्तियों का प्रयोग ताज (Crown) अथवा एक संस्था के रूप में करता है। उसकी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमण्डल के द्वारा किया जाता है। अतः आज वह नाममात्र का अध्यक्ष बनकर रह गया है।

राजा की स्थिति (Position of the King)- ब्रिटिश शासन व्यवस्था में राजा देश का मुख्य कार्यपालक है और सिद्धान्त रूप में उसे सभी कार्यपालिका शक्तियां प्राप्त हैं, किन्तु वह अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वय नहीं करता है, बल्कि इनका प्रयोग प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। वह मंत्रिमण्डल की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता है। वह अपनी मर्जी से प्रधानमंत्री नियुक्त नहीं कर सकता है, क्योंकि यह उस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है, जो कॉमन सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है। यह प्रधानमंत्री की सलाह पर वह अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। वह न तो मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेता है और न ही इनकी अध्यक्षता करता है। ब्रिटिश संसद के अधिवेशन भी नियमित रूप से होते हैं और वह उद्घाटन भाषण, जो मंत्रिमण्डल द्वारा तैयार किया जाता है, को केवल पढ़ता है। वह विभिन्न नियुक्तियां भी मंत्रिमण्डल की सिफारिश पर ही करता है। वह कॉमन सभा को प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही भंग कर सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में राजा केवल नाममात्र का शासक है, क्योंकि उसे कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। राजा पहले जिन अधिकारों का प्रयोग स्वयं करता था, आज उनका प्रयोग वह ताज नामक संस्था के नाम से करता है। इसलिए ब्रिटिश सम्राट के बारे में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "राजा कोई गलती नहीं कर सकता है।"

निःसन्देह आज ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में राजा संवैधानिक या नाममात्र का अध्यक्ष है। **इसीलिए बेजहाट ने कहा है कि राजा के पास सलाह देने, उत्साहित करने तथा चेतावनी देने का अधिकार ही है। राजा के इन तीनों अधिकारों का वर्णन प्रकार से है**-

1. सलाह देने का अधिकार (Right to be Consulted)- बेजहाट का मानना है कि ब्रिटिश राजा को मंत्रिमण्डल को सलाह देने का अधिकार होता है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में राजा से सन्नाह लेता है। राजा की सलाह दो कारणों से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। प्रथम, राजा निष्पक्ष सलाह देता है, क्योंकि वह किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं होता और दूसरे, राजा को बहुत लम्बा अनुभव होता है, क्योंकि वह अपने पद पर लम्बे समय तक बना रहता है, जब कि मत्रिमण्डल बनते-बिगड़ते रहते हैं अथवा आते-जाते रहते हैं। किन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजा सलाह तो दे सकता है, किन्तु उस सलाह को मानना या न मानना प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल की इच्छा पर निर्भर करता है।

2. प्रोत्साहित करने का अधिकार (Right to Encourage)- कई बार मंत्रिमण्डल किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने से डरता है, किन्तु जब राजा उसे वह निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित कर देता है, तो मंत्रिमण्डल बिना किसी झिझक के महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सकता है, क्योंकि उसे राजा का सहयोग प्राप्त होता है। सरकार के जिस कार्य में राजा का सहयोग होता है, उस कार्य को जनता खुशी से स्वीकार कर लेती है अर्थात जनता सरकार की नीति का विरोध नहीं करती है।

3. चेतावनी देने का अधिकार (Right to Warn)- बेजहाट का मानना है कि राजा को मंत्रिमण्डल को चेतावनी देने का भी अधिकार है। राजा देश का मुखिया होता है, अतः उसका यह कर्तव्य होता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सरकार कोई गलत कार्य न करे और यदि सरकार कोई गलत कार्य करती है, तो उसे ऐसा करने से रोके। यद्यपि राजा की चेतावनी पर ध्यान देना या न देना मंत्रिमण्डल की इच्छा पर निर्भर होता है, किन्तु ऐसा देखा गया है कि जब कभी राजा ने सरकार को चेतावनी दी है, तो सरकार ने उसे बड़ी गम्भीरता से लिया है। अतः चाहे कितनी ही मजबूत सरकार क्यों न हो, यह राजा की चेतावनी की अनदेखी नहीं कर सकती है।

इस प्रकार बेजहाट ने यह ठीक ही कहा कि ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में राजा को सरकार को सलाह देने, प्रोत्साहित करने और चेतावनी देने का अधिकार प्राप्त है, भले ही उसकी अन्य शक्तियां ताज को हस्तान्तरित हो गयी हों। आज ब्रिटेन में राजा का पद बहुत ही सम्मान का पद है।

प्रश्न - ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों, कार्यों और स्थिति का परीक्षण तथा मूल्यांकन कीजिए।

(Examine and evaluate the powers, functions and position of the British Prime Minister.)

अथवा

ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति, शक्तियों, कार्यों तथा स्थिति का वर्णन कीजिए।

(Describe the appointment, powers, functions and position of British Prime Minister.)

उत्तर- ब्रिटिश प्रधानमंत्री का पद ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में बड़े महत्त्व और शक्ति का पद माना जाता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि वहाँ पर संसदीय शासन प्रणाली लागू है और मुख्य कार्यपालिका अर्थात सम्राट राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष है। वहाँ वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमण्डल है, जिसका नेता प्रधानमंत्री होता है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति (Appointment of British Prime Minister) - ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती है, किन्तु सम्राट प्रधानमंत्री की नियुक्ति के मामले में स्वतंत्र नहीं है। क्योंकि उसे उस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करना पड़ता है, जो कॉमन सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता और कॉमन सभा का सदस्य होता है। पहले सम्राट किसी भी सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति कर सकता था, किन्तु अब वहाँ यह प्रथा बन गयी है कि प्रधानमंत्री कॉमन सभा से ही नियुक्त किया जाएगा।

प्रधानमंत्री की शक्तियां व कार्य (Powers and Functions of the Prime Minister)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों और कार्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से किया जा सकता है-

1. मंत्रिमण्डल का निर्माण करना (To Form Cabinet)- अपनी नियुक्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री का सबसे पहला कार्य अपने मंत्रिमण्डल का गठन करना होता है। वैसे तो मंत्रियों की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है, किन्तु सम्राट उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त करता है, जिनके नामों की सिफारिश प्रधानमंत्री करता है। प्रधानमंत्री ही यह फैसला करता है कि मंत्रिमण्डल की सदस्य -संख्या कितनी हो और कौन व्यक्ति मंत्री बनें। वह अपने दल के वरिष्ठ और योग्य सदस्यों को ही मंत्री बनवाता है। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई व्यक्ति मन्त्री नहीं बन सकता है। वह संसद के दोनों सदनों से मंत्री बनाता है, ताकि वे दोनों सदनों में सरकार का प्रतिनिधित्व कर सकें।

2.मंत्रियों में विभागों का विभाजन करना (To Allocate Portfolios among Ministers)- मंत्रिमण्डल के गठन के बाद प्रधानमंत्री मंत्रियों में विभागों का बंटवारा करता है। यह मंत्री की योग्यता और अनुभव को देखकर उसे कोई विभाग सौंपता है। प्रधानमंत्री अपने पास भी एक से अधिक विभाग रख सकता है। कोई भी मंत्री विभागों के वितरण के मामले में प्रधानमंत्री से टकराव नहीं करता है।

3. मंत्रिमण्डल की बैठकें बुत्ताना और उनकी अध्यक्षता करना (To Call the Meetings of the Cabinet and to Preside over Them) - प्रधानमंत्री समय-समय पर अपने मंत्रिमण्डल की बैठकें बुलाता रहता है। वह इन बैठकों का एजेन्डा (Agenda) तैयार करता है और बैठकों की अध्यक्षता करता है। वैसे तो मन्त्रिमण्डल की बैठकों में मंत्रियों को चर्चा में भाग लेने और विचार प्रकट करने की पूरी छूट होती है, किन्तु अधिकतर फैसले प्रधानमंत्री की इच्छा से लिए जाते हैं।

4. मंत्रिमण्डल में फेर-बदल करना (To Re-shuttable Ministeries) प्रधानमंत्री कभी भी अपने मंत्रिमण्डल में फेरबदल कर सकता है। वह कभी भी किसी मंत्री का इस्तीफा माँग सकता है और उसकी जगह नया मंत्री रख सकता है। वह मंत्रिमण्डल की संख्या में भी परिवर्तन कर सकता है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन कर सकता है।

5. मंत्रियों को हटाना (To Remove Ministers)- वैसे तो मंत्रियों को पद से हटाने का अधिकार सम्राट का होता है, किन्तु सम्राट प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही किसी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। आमतौर पर मंत्री प्रधानमंत्री के कहने मात्र से ही अपने पद से इस्तीफा दे देता है। यदि कोई मंत्री उसके कहने पर इस्तीफा न दे, तो वह सम्राट द्वारा उसे पद से हटवा सकता है। प्रधानमंत्री मारग्रेट थैवर ने सात मंत्रियों को अपने मंत्रिमण्डल से हटाया था। प्रधानमंत्री का स्वयं का इस्तीफा सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल का इस्तीफा माना जाता है।

6. समन्वय स्थापित करना (To Establish Co-ordination)- प्रधानमंत्री का एक अन्य कार्य विभिन्न मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करना होता है, ताकि समय और धन की बचत हो और प्रशासन एक इकाई के रूप में संगठित होकर कार्य कर सके। इसलिए प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रालयों के मतभेदों को दूर करता है और उन्हें समय-समय पर दिशा-निर्देश देता है। वह इनका निरीक्षण करता है और इन पर नियंत्रण भी करता है।

7. राजा का मुख्य सलाहकार (Chief Adviser to the King)- प्रधानमंत्री ब्रिटिश राजा का प्रमुख सलाहकार होता है। राजा महत्त्वपूर्ण मामलों में उसकी सलाह लेता है, चाहे मामला लार्ड्स सभा में सदस्यों की नियुक्ति का हो या उच्च अधिकारियों की नियुक्ति या पदच्युति का हो, या फिर विदेशी सम्बन्धों का हो, राजा प्रधानमंत्री की सलाह अवश्य लेता है और उसी के अनुसार कार्य करता है।

8. राजा और मंत्रिमण्डल के बीच की कड़ी (Link between the King and the Cabinet)- प्रधानमंत्री राजा और मंत्रिमण्डल के बीच कड़ी का काम भी करता है। ब्रिटेन में राजा मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग नहीं लेता है। वह मंत्रिमण्डल के फैसलों की जानकारी प्रधानमंत्री से ही लेता है। कोई भी मंत्री प्रधानमंत्री के माध्यम से ही राजा से मिल सकता है। राजा प्रधानमंत्री के माध्यम से ही अपने सन्देश मंत्रिमण्डल के पास भेजता है।

9. प्रशासन पर नियंत्रण रखना (To Control Administration) - प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का नेता होता है और इसका नेता होने के कारण वह सम्पूर्ण देश के प्रशासन पर अपना पूरा नियंत्रण रखता है। वह प्रशासन के किसी भी कार्य की जाँच कर सकता है और वह प्रशासन को कोई भी निर्देश दे सकता है, जिसका पालन प्रशासन को अवश्य करना पड़ता है। प्रशासन की सफलता का श्रेय उसे ही जांता है।

10. नियुक्तियां करना (To Make Appointments)-ब्रिटिश सम्राट देश में होने वाली सभी उच्च नियुक्तियां प्रधानमंत्री की सलाह से करता है। उसी की सलाह से सम्राट द्वारा लाई सभा में सदस्यों को मनोनीत किया जाता है। उसी की इच्छा से न्यायाधीशों व धार्मिक नेताओं की नियुक्ति होती है। विदेशों में राजदूत भी उसी की सलाह से नियुक्त होते हैं।

11. कॉमन सभा को भंग करवाना (To Get House of Commons Dissolved)-ब्रिटिश प्रधानमंत्री जब चाहे सम्राट द्वारा कामन सभा को समय से पहले भंग करा सकता है। प्रधानमंत्री ऐसा तब करवाता है, जब कॉमन सभा उसे सहयोग नहीं

देती है। सम्राट को प्रधानमंत्री की कॉमन सभा को भंग करने की सलाह माननी पड़ती है। सम्राट कॉमन सभा को भंग कर नवीन कॉमन सभा के चुनाव करवाता है।

12. वैधानिक कार्य (Legislative Functions)- वैसे तो कानून बनाने का अधिकार ब्रिटिश संसद का होता है, किन्तु विधेयकों को संसद द्वारा पारित करवाने में प्रधानमंत्री की प्रमुख भूमिका होती है। बिना प्रधानमंत्री के सहयोग के कोई भी विधेयक संसद में पारित नहीं हो सकता है। प्रधानमंत्री ही सम्राट को सलाह देकर Orders-in-Council जारी करवाता है।

13. संसद का नेता (Leader of the Parliament)- प्रधानमंत्री संसद का भी नेता होता है। उसकी सलाह पर सम्राट संसद के अधिवेशन बुलाता है और उसी की सलाह पर सम्राट अधिवेशनों की समाप्ति की घोषणा करता है। संसद में सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर प्रधानमंत्री ही देता है। प्रधानमंत्री ही संसद में महत्त्वपूर्ण घोषणाएं करता है। संसद की विभिन्न समितियों में प्रधानमंत्री की इच्छा से ही सदस्य शामिल किए जाते हैं।

14. विदेशी मामलों का संचालन करना (To Conduct Foreign Affairs)- विदेश मंत्री चाहे स्वयं प्रधानमंत्री हो या कोई अन्य मंत्री, प्रधानमंत्री विदेशी मामलों का मुख्य संचालक होता है। जो भी प्रधानमंत्री होता है, वह अपनी इच्छा से विदेश नीति तय कराता है। वही यह निर्णय करता है कि किस देश से किस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किए जाएं। वही विदेशों के दौरे करता है और उसी की इच्छा से विदेशों के साथ सन्धि व समझीते होते हैं। उसी की सलाह पर विदेशों में ब्रिटेन के राजदूत नियुक्त किए जाते हैं और वही विदेशों में विभिन्न मिशन भेजता है। जब कहीं शासनाध्यक्षों की बैठक होती है, तो बैठक में प्रधानमंत्री ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करता है।

15. दल का नेता (Leader of the Party)- प्रधानमंत्री अपने दल का नेता होता है। उसे अपने दत्त का पूरा समर्थन प्राप्त होता है। वह अपने दल की नीतियों को क्रियान्वित कराता है। चुनाव के समय उसी की इच्छा से दलीय उम्मीदवारों का चयन किया जाता है। दल की हार-जीत उसके नेतृत्व पर निर्भर करती है। आम चुनावों में दल की जीत का श्रेय उसे जाता है और अपने दल की हार के लिए भी वही उत्तरदायी होता है। उसका दल उसके मार्ग-दर्शन में कार्य करता है। वह दल को मजबूत बनाने का प्रयत्न करता है।

16. राष्ट्र का नेता (Leader of the Nation)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री राष्ट्र का भी नेता होता है। वह अपनी बुद्धिमत्ता और योग्यता के अनुसार देश को नेतृत्व प्रदान करता है। उसके नेतृत्व पर देश की प्रगति निर्भर करती है। वह संकट के समय देश को संकट से बाहर निकालता है। वह संकट के समय जनता का मनोबल बढ़ाता है। उसके नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देश की प्रतिष्ठा बढ़ती है।

17. नीति-निर्धारण (Policy-Formulation)- सरकार को देश के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्माण करना होता है। ये नीतियां एक प्रकार से प्रधानमंत्री की ही नीतियां होती हैं। उसी के नेतृत्व में सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल इन नीतियों का निर्माण करता है और इन्हें तागू करता है। कोई भी नीति प्रधानमंत्री की इच्छा के विरुद्ध नहीं बन सकती है। वस्तुतः सभी नीतिगत् फैसले प्रधानमंत्री की सहमति से लिए जाते हैं।

प्रधानमंत्री की स्थिति (Position of the Prime Minister) - ब्रिटिश प्रधानमंत्री की उपर्युक्त शक्तियों को देख कर हम उसकी स्थिति को जान सकते हैं। ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री का पद बहुत शक्तिशाली पद माना जाता है। उसके बारे में ग्लैडस्टोन ने कहा है कि "कहीं भी कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसके पास इतनी अधिक शक्तियां हों।" प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का नेता होता है। वह मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है और मन्त्रियों का मार्गदर्शन करता है। वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है। यह कभी भी किसी मन्त्री से त्याग-पत्र माँग सकता है। मंत्रिमण्डल से सम्बन्धित उसकी शक्तियों को देखकर उसके बारे में यह कहा जाता है कि "वह कैबिनेट रूपी मेहराब की आधारशिला होता है।"। उसके विषय में यह कहावत बिल्कुल ठीक है, क्योंकि मन्त्रिमण्डल रूपी महल उसी पर टिका होता है। उसका स्वयं का त्यागपत्र सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र माना जाता है। प्रधानमंत्री को 'समान लोगों में प्रथम' कहा जाता है, क्योंकि वह अन्य मंत्रियों से ऊँचा होता है। इसके अतिरिक्त, प्रधानमंत्री को प्रशासन रूपी जहाज का कप्तान भी कहा जाता है, क्योंकि देश का सम्पूर्ण प्रशासन उसी की देखरेख में चलता है। इसके अतिरिक्त, उसकी नीति-निर्धारण और विदेशी मामलों में प्रमुख भूमिका होती है। वह अपने

दल और देश का भी नेता होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री विश्व का एक बहुत ही शक्तिशाली व्यक्ति है, किन्तु इसके बावजूद भी वह तानाशाह नहीं होता है। **ब्रिटिश प्रधानमंत्री चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसे निम्नलिखित बातें तानाशाह नहीं बनने देती हैं-**

1. विरोधी दल (Opposition Party)-ब्रिटेन में दो-दलीय प्रणाली है। यहाँ एक दल सत्तारूढ़ होता है और दूसरा दल विरोधी दल की भूमिका निभाता है। ब्रिटेन में विरोधी दल को मान्यता प्राप्त होती है और यह बहुत सुदृढ़ होता है। वहाँ विरोधी दल सत्तारूढ़ दल पर अंकुश लगाने का कार्य करता है और उसकी गलतियों को पकड़ता रहता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री विरोधी दल से हमेशा सचेत रहता है।

2. दल का नियंत्रण (Control of the Party)- प्रधानमंत्री पर हमेशा उसके दल का नियंत्रण रहता है और उसे दल के चुनावी घोषणा-पत्र (Election Manifesto) के अनुसार नीतियां बनानी पड़ती हैं। वह अपने दल के वरिष्ठ नेताओं की अनदेखी नहीं कर सकता है। इस प्रकार उसका अपना दल उसे स्वेच्छाचारी नहीं बनने देता है।

3. कॉमन सभा का नियंत्रण (Control of House of Commons)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री पर कॉमन सभा का कारगर नियंत्रण रहता है। यदि कभी प्रधानमंत्री स्वेच्छाचारी बनने की कोशिश करेगा, तो कॉमन सभा उसकी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके उसे पद से हटा देगी। स्पष्ट है कि, ब्रिटिश प्रधानमंत्री कामन सभा की अनदेखी नहीं कर सकता है।

4. प्रेस की स्वतंत्रता (Freedom of Press)-ब्रिटेन में प्रेस पूरी तरह स्वतंत्र है। ब्रिटेन में प्रायः सभी लोग शिक्षित हैं और वे समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं को पढ़ते रहते हैं। सरकार के नियन्त्रण से स्वतंत्र होने के कारण प्रेस सरकार की अच्छाइयों व बुराइयों को उजागर करती रहती है। यदि प्रधानमंत्री देश पर अपनी स्वेच्छाचारिता को थोपने का प्रयास करेगा, तो ब्रिटिश प्रेस द्वारा उसकी कड़ी आलोचना की जाएगी। इससे जनमत उसके विरुद्ध हो जाएगा और उसके लिए शासन चलाना कठिन हो जाएगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चाहे ब्रिटिश प्रधानमंत्री को कितनी ही अधिक शक्तियां प्राप्त हों, यह कभी भी तानाशाह नहीं बन सकता है।

प्रश्न - यह कहना कहाँ तक सही है कि अमेरिकी राष्ट्रपति विश्व में सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिक कार्यपालिका है?

(How far is it correct to say that the President of America is the most powerful

political executive in the world?) **अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य**

उत्तर- अमेरिकी शासन-व्यवस्था में राष्ट्रपति का पद न केवल महत्त्व का पद है, बल्कि यह बहुत शक्तिशाली पद भी है। यह शासन का सर्वोच्च पद है और अन्य सभी पदाधिकारी इसके अधीन हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली लागू है। इस शासन प्रणाली में राष्ट्रपति राज्य का वास्तविक शासक होता है और वह संविधान द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का स्वयं प्रयोग करता है। वह ब्रिटिश सम्राट की तरह नाममात्र का अध्यक्ष नहीं होता है। संविधान द्वारा अमेरिकी राष्ट्रपति को सभी कार्यपालिका शक्तियां प्रदान की गयी हैं। उसके नाम पर सम्पूर्ण देश का शासन चलाया जाता है। कार्यपालिका शक्तियों के साथ ही यह कुछ अन्य शक्तियों का भी प्रयोग करता है। इसी प्रकार मुनरो ने अमेरिकी राष्ट्रपति के बारे में लिखा है कि "वह इतनी विशाल मात्रा में शक्तियों का प्रयोग करता है, जितनी अभी तक लोकतंत्र में किसी अन्य व्यक्ति ने प्रयोग नहीं की हैं।" यह कथन अमेरिकी राष्ट्रपति के बारे में उचित प्रतीत होता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य (Powers and Functions of American President)-
अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों और कार्यों को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers)- अमेरिका का राष्ट्रपति अमेरिका का मुख्य कार्यपालक है। इस नाते सम्पूर्ण देश का प्रशासन उसकी देखरेख में चलाया जाता है। मुख्य कार्यपालक के रूप में उसे निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं-

(i) कानून लागू करना और शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना (Enforcement of Laws and Maintenance of Peace and Order)- अमेरिकी संविधान राष्ट्रपति को देश में कानून लागू करने और शाति-व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी सौंपता है। अमेरिकी राष्ट्रपति इस कार्य के लिए अनेक अधिकारियों व कर्मचारियों की सहायता लेता है। जो कानून कांग्रेस द्वारा समय-समय पर बनाए जाते हैं, राष्ट्रपति उन्हें क्रियान्वित करता है। अमेरिकी राष्ट्रपति देश में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता है। ऐसा करना उसके लिए इसलिए जरूरी है, ताकि लोगों के माल-जान की रक्षा हो सके। अमेरिकी राष्ट्रपति शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस के अतिरिक्त सेना की भी मदद ले सकता है। अमेरिकी संघ और इसके सभी राज्यों में रिपब्लिकन व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेवारी राष्ट्रपति की है। देश में हिंसा और आतंक को रोकने की भी उसको जिम्मेवारी है।

(ii) नियुक्तियां करने और हटाने की शक्तियां (Power of Appointments and Removal)-अमेरिकी राष्ट्रपति को अनेक नियुक्तियां करने का अधिकार है। वह जिन अधिकारियों की नियुक्ति करता है, उन्हें पद से हटा भी सकता है। प्रत्येक नया राष्ट्रपति पद ग्रहण करने पर पहले राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अधिकारियों को हटा देता है और उनकी अपनी पसन्द के लोगों को नियुक्त करता है। अमेरिका के राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मंत्रियों, राजदूतों, विभिन्न आयोगों के अध्यक्ष व सदस्यों, महान्यायवादी आदि की नियुक्ति का अधिकार है, किन्तु इन नियुक्तियों पर सीनेट की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। सीनेट उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के बहुमत से अपनी स्वीकृति देती है।

जहाँ तक अधिकारियों को हटाने का प्रश्न है, राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नहीं हटा सकता, क्योंकि उन्हें पद से हटाने का अधिकार कांग्रेस के पास है। राष्ट्रपति उन अधिकारियों को भी पद से नहीं हटा सकता, जिन्हें महाभियोग द्वारा पद से हटाया जाता है। इसके अतिरिक्त, वह सिविल सेवा के स्थायी कर्मचारियों को भी नहीं हटा सकता, क्योंकि उनकी भर्ती प्रतियोगिता अर्थात् योग्यता के आधार पर होती है। वह उपर्युक्त पदाधिकारियों को छोड़कर, बाकी सभी पदाधिकारियों को हटाने का अधिकार रखता है।

(iii) प्रशासन चलाना (Runing of Administration)- राष्ट्रपति, अमेरिका का सम्पूर्ण प्रशासन सचिवों (मन्त्रियों) की सहायता से चलाता है। मुख्य कार्यपालिका होने के नाते उसकी सम्पूर्ण प्रशासन को चलाने की जिम्मेवारी होती है। उसी के दिशा-निर्देश में प्रशासन चलता है। राष्ट्रपति प्रशासन का मुखिया होता है। उसका पूरा प्रयत्न होता है कि देश के प्रशासन में कुशलता आए, प्रशासन निर्धारित नीतियों के अनुरूप चले और प्रशातन में किसी प्रकार की कोई अनियमितता न आने पाए।

(iii) मंत्रिमण्डल का निर्माण (Formation of the Cabinet)- राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है। यह अपने मंत्रिमण्डल का गठन करता है। वह जिसको चाहे मंत्री नियुक्त कर सकता है। संविधान के तहत यह जरूरी नहीं है कि वह अपने दल से ही मंत्री नियुक्त करे। वह दूसरे दलों से भी मंत्री नियुक्त कर सकता है। राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। मंत्रिमण्डल की इन बैठकों में सभी निर्णय लिए जाते हैं। वह जब चाहे किसी भी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है और वह जब चाहे मंत्रिमण्डल में फेर-बदल कर सकता है।

(iv) विदेशी मामलों के सम्बन्ध में शक्तियां (Powers Related with Foreign Affairs)-अमेरिका के राष्ट्रपति को विदेशी मामलों के संबंध में व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं: जैसे वह विदेश नीति का निर्माण करता है। इसी विदेश नीति के तहत अमेरिका के दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं। अनेक राष्ट्रपतियों ने अमेरिका की विदेश नीति पर अपनी छाप छोड़ी है। राष्ट्रपति अपने प्रयासों से कांग्रेस का सहयोग प्राप्त कर लेता है, ताकि कांग्रेस ऐसा कोई कानून न बनाए जो राष्ट्रपति की विदेश नीति में रोड़ा बने।

अमेरिका के राष्ट्रपति को दूसरे देशों के साथ सन्धियों करने का अधिकार है, किन्तु कोई सन्धि तभी मान्य होती है, जब सीनेट उसे अपनी स्वीकृति दे देती है। कई बार सीनेट इस मामले में रोड़ा भी बन जाती है। उदाहरण के लिए राष्ट्र संघ (League of Nations) की स्थापना में राष्ट्रपति वुडरो विल्सन की प्रमुख भूमिका थी, किन्तु अमेरिका स्वयं इस संघ का सदस्य नहीं बन

पाया, क्योंकि सीनेट ने इसकी स्वीकृति नहीं दी थी। राष्ट्रपति का सदैव यह प्रयास रहता है कि सीनेट उसके द्वारा की गयी सन्धियों को स्वीकृति दे।

कई बार राष्ट्रपति किसी देश से संधि न करके कार्यकारी समझौते (Executive Agreements) कर लेता है, क्योंकि जहाँ संधि पर सीनेट की स्वीकृति की जरूरत पड़ती है, वहीं कार्यकारी समझीते के लिए इसकी जरूरत नहीं पड़ती। अमेरिका का राष्ट्रपति प्रायः ऐसा करता रहता है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जापान के सम्राट के साथ एक कार्यकारी समझौता किया था, जिसका संबंध जापानी विदेशियों से था। राष्ट्रपति बुश ने पाकिस्तान के साथ आतंकवाद पर रोक लगाने का समझौता किया और उसे बहुत अधिक आर्थिक सहायता दी। यद्यपि सीनेट राष्ट्रपति के ऐसे समझौतों पर कोई आपत्ति नहीं करती है, किन्तु 1972 में सीनेट ने प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति निक्सन के पुर्तगाल के साथ किए गए कार्यकारी समझौते को रद्द कर दिया था।

अमेरिकी राष्ट्रपति विदेशों में अमेरिका के राजदूतों की नियुक्ति करता है और अमेरिका में विदेशी राजदूतों के नियुक्ति-पत्र ग्रहण करता है। राजदूतों की नियुक्ति के अतिरिक्त राष्ट्रपति अपने निजी प्रतिनिधियों की नियुक्ति कर सकता है। राष्ट्रपति को किसी नए बने राज्य को मान्यता देने या न देने का अधिकार भी है। 1933 में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने रूस को मान्यता दी थी, तो 1971 में राष्ट्रपति निक्सन ने साम्यवादी चीन को मान्यता दी।

(v) प्रति-रक्षा-सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers related with Defence)- अमेरिकी राष्ट्रपति अमेरिका की सेनाओं का प्रमुख सेनापति होता है और प्रमुख सेनापति के नाते उसे व्यापक प्रतिरक्षा-संबंधी शक्तियां प्राप्त हैं। वैसे तो युद्ध और शांति की घोषणा का अधिकार कांग्रेस को है, किन्तु किसी जगह सेनाएं भेजने का अधिकार राष्ट्रपति को ही है। राष्ट्रपति ऐसी स्थिति पैदा कर सकता है, जिससे कांग्रेस को युद्ध की स्वीकृति देनी पड़े। राष्ट्रपति बुश ने इराक में अमेरिकी सेना को भेजा और सद्दाम सरकार को हटाया। अगस्त-सितम्बर, 2014 में अमेरिकी सेना ने इराक और सीरिया में सक्रिय सुन्नी आतंकवादियों पर गोलाबारी की।

2. वैधानिक शक्तियां (Legislative Powers) - अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण वैधानिक शक्तियां कांग्रेस को सौंपी गयी हैं, किन्तु राष्ट्रपति को भी कुछ वैधानिक शक्तियां प्राप्त हैं, ताकि कार्यपालिका का विधानपालिका पर अंकुश बना रहे। अमेरिकी राष्ट्रपति की वैधानिक शक्तियां इस प्रकार हैं-

(i) सन्देश भेजना (To Send Messages)- अमेरिकी राष्ट्रपति को अमेरिकी कांग्रेस के किसी भी सदन को सन्देश भेजने का अधिकार प्राप्त है। वह सन्देश के माध्यम से अपनी राय से कांग्रेस को अवगत कराता है। कांग्रेस राष्ट्रपति के सन्देश को महत्त्व देती है और किसी विषय पर उसके विचार जानकर निर्णय लेती है। अमेरिकी राष्ट्रपति अपने सन्देश लिखित रूप में भेज सकता है या वह स्वयं कांग्रेस में उपस्थित होकर अपना सन्देश पढ़ सकता है। राष्ट्रपति वाशिंगटन और विल्सन कांग्रेस में स्वयं उपस्थित होकर अपने सन्देश पढ़ते थे। राष्ट्रपति अपने सन्देशों में प्रशासन की स्थिति पर प्रकाश डालता है और कांग्रेस से कुछ विशेष कानून बनाने का आग्रह करता है। अमेरिकी राष्ट्रपति के सन्देशों का बड़ा महत्त्व होता है। वह इनके माध्यम से विभिन्न विषयों पर सरकार का पक्ष स्पष्ट करता है और भविष्य के लिए सरकार की योजनाओं का खुलासा करता है। निःसन्देह राष्ट्रपति अपने सन्देश से कांग्रेस के विधायी कार्यों को प्रभावित करता है।

(ii) निषेधाधिकार (Veto Power)- अमेरिकी कांग्रेस द्वारा जो विधेयक पारित किए जाते हैं, उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति ली जाती है। राष्ट्रपति यह स्वीकृति दे भी सकता है और नहीं भी। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी स्वीकृति न दे और कांग्रेस के दोनों सदन उस विधेयक को दोबारा दो-तिहाई बहुमत से पारित कर दे, तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। किन्तु यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को दस दिनों तक अपनी स्वीकृति न दे और इसी बीच कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो जाए, तो ऐसी स्थिति में वह विधेयक समाप्त समझा जाता है। राष्ट्रपति का यह अधिकार को 'जेबी निषेधाधिकार' (Pocket Veto) कहलाता है। राष्ट्रपति इस अधिकार का प्रयोग करके कांग्रेस द्वारा पारित अनेक विधेयकों समाप्त कर देता है।

(iii) विशेष अधिवेशन बुलाना (To Convene Special Session)-वैसे तो अमेरिका में कांग्रेस के नियमित अधिवेशन समय पर बुलाए जाते हैं, किन्तु राष्ट्रपति कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुला सकता है। राष्ट्रपति द्वारा बुलाए गए विशेष

अधिवेशनों में राष्ट्रपति द्वारा रखे गए विषयों पर ही विचार होता है। कांग्रेस के दोनों सदनों में मतभेद होने पर राष्ट्रपति अधिवेशन को कुछ समय के लिए स्थगित कर सकता है। राष्ट्रपति कांग्रेस के अधिवेशन की अवधि भी बढ़ा सकता है।

(vi) अन्य साधन (Other Means) - उपर्युक्त वैधानिक शक्तियों के अतिरिक्त राष्ट्रपति कुछ अन्य ऐसे साधन अपनाता है, जिनसे वह कानून निर्माण के मामले में कांग्रेस पर अपना प्रभाव डाल सकता है। प्रथम, उसके पास नियुक्ति का अधिकार होता है और अपने इस अधिकार का प्रयोग करके वह कांग्रेस के सदस्यों-विशेषकर सीनेट के सदस्यों को प्रभावित कर सकता है। यह कांग्रेस सदस्यों को नौकरी का लालच दे सकता है। दूसरे, राष्ट्रपति अपने राजनीतिक दल का प्रमुख नेता होता है। उसका दल कानून-निर्माण के कार्य में उसको कांग्रेस में पूरा सहयोग देता है। तीसरे, आधुनिक युग में कानून का स्वरूप बड़ा पेचीदा हो गया है। अतः कांग्रेस के साधारण सदस्य ऐसे कानूनों को नहीं समझ सकते हैं। अतः बदलते वातावरण में कांग्रेस विधेयकों के प्रारूप के लिए निपुण लोगों की सेवाओं पर निर्भर करती है। कांग्रेस में अधिकतर विधेयक मंत्रिमण्डल द्वारा पेश किए जाते हैं।
3. वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)- अमेरिका में राष्ट्रपति को देश के बजट को तैयार करने का अधिकार है, इस कार्य में ब्यूरो ऑफ बजट उसकी सहायता करता है। बजट पारित करने या उसमें कटौती करने का अधिकार कांग्रेस को है। प्रायः कांग्रेस राष्ट्रपति द्वारा की गयी धन की मांगों को पारित कर देती है। पारित बजट को राष्ट्रपति और उसके सहयोगी मंत्रियों द्वारा लागू किया जाता है।

4. न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) — अमेरिका के राष्ट्रपति को कई न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति करता है। वह किसी अपराधी की सजा को कम या माफ कर सकता है। वह मृत्युदंड को उम्र कैद में बदल सकता है। उसे आम माफी (Amnesty) का भी अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति जैक्शन ने 1865 में विद्रोह करने वाले लोगों को माफ कर दिया था।

5. संकटकालीन शक्तियां (Emergency Powers)- यद्यपि भारतीय संविधान की तरह अमेरिकी संविधान में राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियां नहीं दी गयी हैं, फिर भी संकट के समय अमेरिकी राष्ट्रपति को अपार शक्तियां मिल जाती हैं। उसके हाथ में सम्पूर्ण प्रशासन की बागडोर आ जाती है। वह ही संकट के समय का निर्णय करता है। कांग्रेस संकट का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को अनेक अतिरिक्त शक्तियां दे देती है। वह युद्ध अथवा संकट के समय नागरिकों के अधिकारों को भी स्थगित कर सकता है। प्रथम और दूसरे विश्व युद्ध के समय अमेरिकी राष्ट्रपति ने अपनी शक्तियों का खुलकर प्रयोग किया।

6. राष्ट्र का नेता (Leader of the Nation)- यद्यपि अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव दलीय आधार पर होता है, किन्तु चुनाव जीतने के पश्चात् यह अमेरिका का प्रतिनिधि बन जाता है और समस्त देश उसे अपना नेता मानने लगता है। संकट के समय जनता की नजर उसी पर जाती है। वह देश की सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक समस्याओं का हल खोजता है। वह विदेशों में अमेरिका का प्रतिनिधित्व करता है। वह विश्व राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह संयुक्त राष्ट्र में मजबूती के साथ अमेरिका का पक्ष रखता है। वह अमेरिका में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी अमेरिकी नागरिकों के हितों की रक्षा करता है। यह अपने राष्ट्र के हितों को ध्यान में रख कर विदेशों से कोई संधि या समझौता करता है। वह हमेशा जनता के दुख-दर्द को सुनने के लिए तैयार रहता है।

7. दल का नेता (Leader of the Party)- अमेरिका का राष्ट्रपति अपने दल का प्रमुख नेता होता है। यह अपने दल की मजबूती के लिए कार्य करता है। वह अपने दल की नीतियों को क्रियान्वित करने का प्रयास करता है। यह चुनाव के समय अपने दल के लिए प्रचार करता है और दल के लिए धन भी इकट्ठा करता है। वह दल के सहयोग से कांग्रेस से अपनी नीतियों को स्वीकृति दिलाने में सफल रहता है।

राष्ट्रपति की स्थिति (Position of the President)- अमेरिकी राष्ट्रपति की उपर्युक्त शक्तियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि अमेरिका में राष्ट्रपति का पद बहुत शक्तिशाली है। देश का मुख्य कार्यपालिका होने के नाते उसे संघ सरकार की समस्त कार्यपालिका शक्तियां प्राप्त हैं और वह अपनी शक्तियों का स्वयं प्रयोग करता है। वह ब्रिटेन और जापान के सम्राट और भारत के राष्ट्रपति की तरह नाममात्र की कार्यपालिका नहीं, बल्कि वास्तविक कार्यपालिका है। यह असंख्य अधिकारियों और कर्मचारियों के सहयोग से देश के शासन को चलाता है। यह देश में उच्च पदाधिकारियों की नियुक्तियां करता है और यह अनेक पदाधिकारियों को हटा भी सकता है। उसे संकटकाल के दौरान विशेष शक्तियां के प्रयोग करने का मौका मिलता है और उस

स्थिति में वह किसी तानाशाह से कम नहीं होता है।

इतनी अधिक शक्तियों के बाद भी अमेरिकी राष्ट्रपति तानाशाह नहीं बन सकता, क्योंकि कांग्रेस उसे महाभियोग द्वारा हटा सकती है। दूसरे उसकी नियुक्तियों और सन्धि सम्बन्धी शक्तियां सीनेट द्वारा प्रतिबन्धित हैं। साथ ही न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय भी उस पर अपना नियंत्रण रखता है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री और अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों की तुलना कीजिए तथा उनके बीच अन्तर बताइए ।

(Compare and contrast between the powers of the British Prime Minister and the President of America.)

उत्तर- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का राष्ट्रपति और ब्रिटेन का प्रधानमंत्री दोनों अपने-अपने राज्यों के शासनाध्यक्ष है। इनके विषय में यह कहना कठिन है कि दोनों में कौन अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि दोनों अलग-अलग शासन-प्रणालियों के तहत अपने-अपने दायित्यों का निर्वाह करते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति एवं ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों की तुलना करते समय हमें दोनों देशों की शासन प्रणालियों के मध्य विद्यमान अन्तरों को ध्यान में रखना चाहिए।

शासन प्रणाली में अंतर-

अमेरिका और ब्रिटेन की शासन प्रणालियों में एक अन्तर यह है कि ब्रिटेन में एकात्मक व्यवस्था विद्यमान होने के कारण ब्रिटिश प्रधानमंत्री समस्त राष्ट्र के लिए कार्य करता है, किन्तु अमेरिका में संघीय व्यवस्था होने के कारण अमेरिकी राष्ट्रपति केवल संघीय क्षेत्र में ही कार्य करता है; संधीय इकाइयों के क्षेत्र में नहीं।

अमेरिकी और ब्रिटिश शासन-प्रणालियों में एक अन्तर यह है कि अमेरिकी राष्ट्रपति को जो शक्तियों प्राप्त हैं, वे उसकी मौलिक शक्तियों हैं; प्रदत्त शक्तियाँ नहीं, क्योंकि ये शक्तियाँ उसे संविधान द्वारा प्रदान की गयी है। इसके विपरीत, ब्रिटिश प्रधानमंत्री जिन शक्तियों का प्रयोग करता है, वे उसकी अपनी शक्तियाँ नहीं हैं; बल्कि सम्राट द्वारा प्रदान की गयी शक्तियाँ हैं। इसके अलावा, ब्रिटिश प्रधानमंत्री के पद को कानूनी मान्यता भी काफी बाद में मिली है। अन्य शब्दों में, जहाँ अमेरिकी राष्ट्रपति की अधिकांश शक्तियाँ संविधान पर आधारित हैं, वहाँ ब्रिटिश प्रधानमंत्री की अधिकांश शक्तियों का आधार परम्पराएँ हैं।

इस विषय में प्रो. हैरोल्ड जे. लॉस्की का कहना है कि अमेरिका का राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से कुछ अधिक और कुछ कम है अर्थात् कुछ मामलों में अमेरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली है और कुछ मामलों में कम शक्तिशाली।

अमेरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली (American President is More Powerful than British Prime Minister) - निम्नलिखित मामलों में अमेरिका का राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली है-

1. अध्यक्षता के सम्बन्ध में (Regarding Headship)-अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि एक राज्य और सरकार दोनों का अध्यक्ष है, जब कि दूसरा केवल सरकार का अध्यक्ष है। ब्रिटेन में राज्य का अध्यक्ष सम्राट होता है, जो अपने पैतृक अधिकार के आधार पर राजा बनता है। यहाँ प्रधानमंत्री केवल शासन का अध्यक्ष होता है। अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष होता है और शासन का अध्यक्ष भी। इस दृष्टि से यह ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली है।

2. मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध में (Regarding Cabinet)- अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री में दूसरा अन्तर मंत्रिमण्डल के संबंध में है। अमेरिकी राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल का स्वामी होता है, क्योंकि वह मंत्रियों को चुनने में पूरी तरह स्वतंत्र होता है। वह किसी भी व्यक्ति को मंत्री बना सकता है और जब चाहे किसी मंत्री को पद से हटा सकता है। किन्तु ब्रिटिश प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमण्डल का स्वामी न होकर नेता होता है। यह मन्त्रियों की नियुक्ति के विषय में अमेरिकी राष्ट्रपति के समान स्वतंत्र नहीं होता है और न ही वह उन्हें अपनी इच्छा से पद से हटा सकता है। वह मन्त्रियों से पद से त्यागपत्र देने की माँग कर सकता है। यदि कोई मंत्री त्यागपत्र न दे, तो उसे पद से हटाने का अधिकार सम्राट को होता है, न कि प्रधानमंत्री को।

3. कार्यकाल के संबंध में (Regarding Term of Office)- अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री में कार्यकाल के संबंध में भी अन्तर है। अमेरिका का राष्ट्रपति चार वर्ष के लिए चुना जाता है। उसे चार वर्ष से पहले कांग्रेस महाभियोग द्वारा हटा सकती है, जिसका तरीका बड़ा कठिन है। इसके विपरीत, कामन सभा कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके ब्रिटिश प्रधानमंत्री को पद से हटा सकती है। उल्लेखनीय है कि 'अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का तरीका महाभियोग प्रस्ताव पारित करने की तुलना में बहुत आसान है। अतः कार्यकाल के सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की तुलना में अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति मजबूत है।

4. विदेशी मामलों के संबंध में (Regarding Foreign Affairs)-विदेशी मामलों के सम्बन्ध में भी अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति से मजबूत है। अमेरिकी राष्ट्रपति विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति करता है और विदेशों के राजदूतों के नियक्ति-पत्र स्वीकार करता है, जब कि ब्रिटेन में यह कार्य राजा करता है, प्रधानमंत्री नहीं।

5. प्रतिरक्षा के संबंध में (Regarding Defence)- अमेरिकी राष्ट्रपति सैनिक मामलों में भी ब्रिटिश प्रधानमंत्री से मजबूत स्थिति में है। वह अमेरिकी सेनाओं का मुख्य सेनापति है और इस नाते सेना को कहीं भी भेज सकता है और कांग्रेस को युद्ध की घोषणा के लिए बाध्य कर सकता है, जब कि ब्रिटेन में राजा सेनाओं का मुख्य सेनापति होता है; प्रधानमंत्री नहीं।

6. न्यायिक शक्तियों के संबंध में (Regarding Judicial Powers)- न्यायिक शक्तियों के संबंध में भी अमेरिकी राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से बेहतर स्थिति में है। अमेरिका में राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। यह क्षमादान का अधिकार भी रखता है। इसके विपरीत, ब्रिटिश प्रधानमंत्री को न तो न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार है और न ही क्षमादान का।

7. सम्मानजनक पदों और उपाधियों के संबंध में (Regarding Honour and Titles)- अमेरिकी राष्ट्रपति नागरिकों को सम्मान और उपाधियाँ देने के विषय में ब्रिटिश प्रधानमंत्री से शक्तिशाली है। अमेरिका में नागरिकों को विभिन्न उपाधियाँ राष्ट्रपति द्वारा दी जाती हैं, जब कि ब्रिटेन में नागरिकों को उपाधियाँ राजा द्वारा दी जाती हैं। प्रधानमंत्री तो इस विषय में राजा से सिफारिश करता है।

8. प्रशासन के संबंध में (Regarding Administration)- अमेरिकी राष्ट्रपति देश का मुख्य कार्यपालक होता है। यह प्रत्यक्ष रूप में देश के सम्पूर्ण प्रशासन को चलाता है। अमेरिका में मंत्री राष्ट्रपति के सलाहकार होते हैं, अतः देश का वास्तविक शासक राष्ट्रपति ही होता है। सभी मन्त्री व प्रशासनिक अधिकारी उसके अधीन होते हैं। इस दृष्टि से अमेरिकी राष्ट्रपति को ब्रिटिश प्रधानमंत्री के मुकाबले में अधिक प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त हैं। दलीय प्रभाव के कारण ब्रिटेन में प्रधानमंत्री और उसके मंत्रियों के बीच अनबन चलती रहती है।

9. नियुक्तियों के संबंध में (Regarding Appointments)- अमेरिकी राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुना जाता है। उसका चुनाव चार वर्ष के लिए होता है, जब कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है। सम्राट कामन सभा में बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

10. समन्वय के सम्बन्ध में (Regarding Co-ordination)- वैसे तो दोनों नेता अपने-अपने यहाँ समन्वयकारी की भूमिका अदा करते हैं, किन्तु इस विषय में अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियां सीमित हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करता है, जब कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री दलीय हितों को महत्त्व देता है और इस नाते सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि अमेरिकी राष्ट्रपति कुछ मामलों में ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है (British Prime Minister is More Powerful then American President)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री निम्नलिखित मामलों में अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है-

1. कानून निर्माण के सम्बन्ध में (Regarding Legislation)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री, अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना में वैधानिक

क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त लागू होने के कारण कानून बनाने का अधिकार कांग्रेस को सौंपा गया है। अमेरिकी राष्ट्रपति तो केवल कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों को अपनी स्वीकृति देता है। वस्तुतः वैधानिक क्षेत्र में उसकी शक्ति सीमित है। इसके विपरीत, ब्रिटेन में संसदीय शासन-प्रणाली लागू होने के कारण विधानपालिका और कार्यपालिका में गहन संबंध होता है, ब्रिटिश प्रधानमंत्री के दल का कॉमन सभा में बहुमत होता है, अतः सरकार द्वारा प्रस्तुत कोई भी विधेयक संसद आसानी से पारित कर देती है। स्पष्ट है कि कानून बनाने के क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्ति विस्तृत है।

2. निम्न सदन को भंग करने के सम्बन्ध में (Regarding Dissolution of the Lower House)- निम्न सदन को भंग करने के संबंध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति के मुकाबले में अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि वह सम्राट को कहकर कभी भी संसद के निम्न सदन अर्थात कॉमन सभा को भंग करवा सकता है। इस विषय में सम्राट को प्रधानमंत्री की राय अवश्य माननी पड़ती है। जब कि इसके विपरीत, अमेरिका में राष्ट्रपति प्रतिनिधि सदन को भंग नहीं कर सकता है।

3. दल से सम्बन्ध के विषय में (Regarding Relationship Party)- अपने-अपने राजनीतिक दल के साथ सम्बन्ध के विषय में भी ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है। प्रधानमंत्री अपने दल का प्रमुख नेता होता है, अतः अपने दल के अन्दर प्रधानमंत्री की स्थिति बड़ी मजबूत होती है। वह अपने दल पर पूरी पकड़ रखता है। दलीय अनुशासन होने के कारण प्रधानमंत्री का दल हमेशा उसे सहयोग देता है। अमेरिकी राष्ट्रपति अपने दल पर उतनी पकड़ नहीं रखता है और न ही वह अपने दल के सहयोग से चुनाव जीतता है। वस्तुतः वह अपनी व्यक्तिगत छवि से चुनाव जीतता है। कई बार दल के सदस्य राष्ट्रपति की आलोचना करते हैं और राष्ट्रपति के विरुद्ध सदन में मतदान भी करते हैं।

4. वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में (Regarding Financial Matters)- ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। वह वित्त मंत्री से देश का बजट तैयार करवाता है और उसे संसद से पारित करवाता है, क्योंकि उसके दल को संसद में बहुमत प्राप्त होता है। वस्तुतः ब्रिटिश प्रधानमंत्री को बजट पारित करवाने में कोई कठिनाई नहीं होती है, जब कि अमेरिका में राष्ट्रपति बजट तो बनवाता है, किन्तु कांग्रेस से बजट को आसानी से पारित नहीं करा सकता है। कांग्रेस उस बजट में कटौती करके राष्ट्रपति को आर्थिक संकट में डाल सकती है।

5. संधि व समझौतों के सम्बन्ध में (Regarding Treaty and Agreements)- जहाँ तक संधि व समझौतों का संबंध है, अमेरिकी राष्ट्रपति को इन पर सीनेट की स्वीकृति लेनी पड़ती है। कई बार सीनेट ने स्वीकृति देने से मना किया है; जैसे- सीनेट की असहमति के कारण अमेरिका राष्ट्र संघ (League of Nations) का सदस्य नहीं बन सका था। ब्रिटेन में विदेशों के साथ संधि व समझौते प्रधानमंत्री ही करता है और बाद में वह इन पर संसद से स्वीकृति ले लेता है, क्योंकि उसके दल का संसद में बहुमत होता है।

स्पष्ट है कि कई मामलों में ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से शक्तिशाली है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहना कठिन है कि अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री में कौन अधिक शक्तिशाली है। इन दोनों की शक्तियों की तुलना से तो यही स्पष्ट होता है कि कुछ क्षेत्रों में अमेरिकी राष्ट्रपति शक्तिशाली है, तो कुछ क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रधानमंत्री।

★★----------★★